UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182874

UNIVERSAL
LIBRARY

सत्य-हरिश्चन्द्र

नाटक

प्रस्तावना तथा टिप्पणी सहित

सम्पादक

पं० जीवन शंकर याज्ञिक, एम० ए०, एल-एल० बी०
प्रोफेसर, बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी

तथा

पं० केदारनाथ भट्ट, एम० ए०, एल-एल० बी०,
वकील हाई कोर्ट, आगरा

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९४०

मूल्य ।=)"

COPYRIGHT

1st Edition 1927. Reprinted 1931, 1932, 1934, 1936
1938 and 1940.

Printed by
RAMZAN ALI SHAH at the National Press
Allahabad.

2 M. 28

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

संक्षिप्त चरित्र

[illegible] का जन्म भाद्रपद शुक्ला सप्तमी संवत्
०७ [illegible] हुआ था। आपके पूर्वज इतिहास-प्रसिद्ध
[illegible]सेठ अमीचन्द थे जिनको क्लाइव ने प्लासी के युद्ध के पश्चात्
[illegible]क जाली पत्र बना कर धोखा दिया था। उनके पुत्र शाह फतह-
चन्द काशी में आ बसे थे। यहाँ भी इस अग्रवाल वंश पर लक्ष्मी
की पूर्ण कृपा बनी रही और फतहचन्द जी के पुत्र हरषचन्द जी
ने अतुल सम्पत्ति और दानशीलता के कारण खूब प्रसिद्धि पाई।
बाबू गोपालचन्द्र जी उपनाम गिरधरदास इन्हीं के पुत्र थे और
बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। बाबू गोपालचन्द्र जी स्वयं हिन्दी के
अच्छे कवि थे। सच्चरित्र और बड़े धर्मनिष्ठ थे। काशी में उनका
बड़ा सम्मान होता था। बाबू हरिश्चन्द्र की माता श्रीमती पार्वती
जी भी बड़ी सुशीला और उदार थीं। माता-पिता के गुण-स्वभाव
की झलक बाबू हरिश्चन्द्र के चरित्र में भली प्रकार दिखाई
देती थी।

बाल्यावस्था में ही भारतेन्दु ने अपनी असाधारण बुद्धि और
प्रतिभा का परिचय दिया था। जिस छोटी अवस्था में बालकों को
शुद्ध बोलना भी नहीं आता। हरिश्चन्द्र जी ने एक स्वरचित दोहा
सुनाकर अपने पिता जी को मुग्ध कर उच्च कवि होने का आशी-
र्वाद पाया था। परन्तु उन्होंने अपने आशीर्वाद को फलीभूत होते न
देखा। हरिश्चन्द्र जी नव वर्ष की अवस्था में ही पितृ-हीन हो गए।
जननी; परन्तु पितृ-हीन बालक हरिश्चन्द्र की शिक्षा ठीक न हो सकी।
राजा शिवप्रसाद से थोड़ी अँग्रेजी पढ़ क्वीन्स कालेज में शिक्षा

पाई। परन्तु विद्याभ्यास में कभी मन नहीं लगाया। प्रखर बुद्धि से गुरुजन प्रसन्न अवश्य रहते थे। अँग्रेजी, संस्कृत और फ़ारसी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर हरिश्चन्द्र जी ने शिक्षा समाप्त कर डाली। विद्याप्रेम तो था ही बाद में देश की अन्य भाषाओं का—गुजराती, मराठी, बंगला आदि का—भी अभ्यास कर लिया था। संभव है कि कालेज की साधारण शिक्षा के फेर में पड़कर हरिश्चन्द्र जी अपनी कवित्व-शक्ति को खो बैठते।

कालेज छोड़कर संसार-क्षेत्र में अवतीर्ण होते ही भारतेन्दु जी को साहित्य और देश-सेवा की धुन लगी। पाश्चात्य शिक्षा का महत्व समझ कर उन्होंने 'चौखम्भा स्कूल' की स्थापना की जिसमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। अब यह 'हरिश्चन्द्र स्कूल' के नाम से प्रख्यात है। समाज-सुधार के लिए सभा-समितियाँ बनाईं। देश-सेवा का उनको सदैव ध्यान बना रहता था। 'तदीय समाज' के सभ्यों से स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और हिंसा निषेध की प्रतिज्ञा ली जाती थी। वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार में विशेष उत्साह था। गुणीजनों का सम्मान करना और उनकी आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन देना तो भारतेन्दु जी के लिए प्रति दिवस एक साधारण बात थी। देशाटन भी भारतेन्दु जी ने खूब किया और लब्ध-कीर्ति होने से कई स्थानों पर उनके भाषण भी हुए। देश के अग्रगण्य महापुरुषों से परिचय हुआ और उनसे आदर भी पाया। महाराज काशीराज और महाराणा उदयपुर भारतेन्दु जी को बहुत मानते थे। अपने अनेक गुणों के कारण उनका समाज में बड़ा आदर था और साथ ही वे लोक-प्रिय भी थे। साहित्य सेवा ने उनको यशस्वी बनाया था और वही उनकी कीर्ति को अमर बनाए रखेगी। उनका विशेष समय साहित्यचर्चा, ग्रन्थ-निर्माण में ही गया और यही उनके जीवन का मुख्य कार्य रहा।

केवल ३५ वर्ष की अवस्था में भारतेन्दु जी का देहान्त हो गया। परन्तु इतने अल्प-काल में ही हिन्दी साहित्य की जो अभिवृद्धि की वह आश्चर्यकारक है। संवत् १९३७ में जब पण्डित रामशङ्कर व्यास ने बाबू हरिश्चन्द्र जी को 'भारतेन्दु' की पदवी से विभूषित करने का प्रस्ताव प्रकाशित किया तो मुक्त कंठ से छोटे बड़े सब ने उसे स्वीकार किया और तब से देश भर उनको उसी उपाधि से पुकारने लगा। सच्ची साहित्य-सेवा और लोकप्रियता का यही प्रमाण है। बेचारे हिन्दी भाषा-भाषियों के पास उस समय और क्या था जिसको कृतज्ञता-पूर्वक प्रदान कर बाबू हरिश्चन्द्र जी का सम्मान करते।

हमारे चरित-नायक का स्वभाव बड़ा सरल, स्नेहमय और विनोद प्रिय था। आपके हृदय पर प्रेम-भाव का अधिक प्रभाव था और यह बात उनके काव्य से स्पष्ट मालूम होती है। आप निःस्वार्थ और निर्भीक थे। प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेकर थोड़ी सी अवस्था में बड़ी सम्पत्ति के स्वामी हो गए। फिर क्या आश्चर्य यदि आपसे कुछ दोष बन पड़े। रईस थे, मनमौजी और विलास-प्रिय हो गए। परन्तु धर्म का भाव, विशेष कर वैष्णव सम्प्रदाय का, बहुत गहरा था। इससे अधिक बहकने न पाये। व्यय, अपव्यय, दान, दक्षिणा आदि में खूब रुपया उठता था। किसी का जी दुखाना नहीं जानते थे, जिससे बातें करते उसका चित्त प्रसन्न हो जाता। उनकी बातों और व्यवहार में बड़ी मोहिनी शक्ति थी! सुरुचि का पूर्ण विकास था, दर्शनीय वस्तुओं का संग्रह बड़े चाव से होता था। बाबू साहिब सदा प्रसन्न चित्त रहते और अपने हास्य एवम् विनोद-प्रिय स्वभाव से सब को आकर्षित कर लेते थे। क्षय रोग से उनकी अकाल मृत्यु से 'हिन्दी-हिन्दू हिन्दुस्तान' को जो दुःख हुआ वह चन्द्रास्त के पश्चात् घोर निशा सम था। उन्होंने अपना चित्र निम्नलिखित शब्दों में खींचा है और वह सर्वथा यथार्थ है—

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरिश्चन्द्र नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के॥

साहित्य-सेवा

हिन्दी साहित्य के लिए भारतेन्दु जी ने एक नवीन युग का प्रादुर्भाव किया है। आधुनिक हिन्दी के एक प्रकार आप ही जन्म-दाता थे। उनकी रचनाओं ने हिन्दी को जीवन दिया और उसके साहित्य के सभी अंगों की वृद्धि की। यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि यदि भारतेन्दु जी जैसे हिन्दी प्रेमी और प्रतिभा-सम्पन्न काव्यकार का जन्म न होता तो आज हमारे साहित्य की वर्तमान उन्नत दशा देखने को प्राप्त न होती। राजा शिवप्रसाद का वश चला होता तो वे हिन्दी को उर्दू की दासी तथा अनुगामिनी बना कर ही छोड़ते। हिन्दी साहित्य के जीवन की कोई आशा नहीं की जा सकती थी। उस समय भारतेन्दु जी ने उसकी रक्षा की, स्वरचना से पूर्त्ति की और लेखकों तथा कवियों को मार्ग-प्रदर्शन कर हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया। इसीलिए हिन्दी जगत् आज भारतेन्दु जी का ऋणी है। जैसे हिन्दू जाति की मान-मर्यादा की रक्षा साहित्य द्वारा उन्होंने की उसका विस्मरण नहीं हो सकता। हिन्दू जनता ही हिन्दी से विमुख हो रही थी, मातृ-भाषा को असभ्य, ग्रामीण भाषा समझ कर उसका तिरस्कार करती थी। भारतेन्दु जी के अल्प जीवन-काल में ही उनके सदुद्योग से वह ऐसी

पल्लवित हुई कि फिर उसको मृत समझने वाले भी उसकी नव-विकसित शोभा से मुग्ध होने लगे। नागरी लिपि के प्रचार का उद्योग जो किया जा रहा है उसका भी सूत्र-पात भारतेन्दु जी ने ही किया था। वास्तव में वे ही इस नवीनयुग के प्रवर्त्तक हैं और जो रूप उन्होंने हिन्दी को दिया है और जैसी शैली स्थिर की है उसी के आधार पर अब हमारे साहित्य की उन्नति हो रही है।

भारतेन्दु जी ने अवस्था बहुत कम पाई; परन्तु केवल १७ वर्ष की साहित्य-सेवा का अवसर मिलने पर भी उन्होंने दो सौ से अधिक ग्रंथ लिखे और लिखवाये। गद्य, पद्य, नाटक समालोचना आदि सभी तरह का काव्य लिखा और विविध विषयों पर भली प्रकार लिखा। कवि-समाज बनाकर काव्य रचयिताओं को हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया। स्वरचित ग्रंथों के साथ प्राचीन और समकालीन कवियों के भी ग्रंथ छपवाये। स्वयं सुकवि की सत्कीर्त्ति प्राप्त कर अन्य गुणीजनों के सम्मान-दाता बने। तिमिराच्छन्न साहित्य-गगन में भारतेन्दु का उदय हुआ, तब अनेक ताराओं ने भी मण्डलाकार होकर अपनी अपनी छटा दिखलाई। 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन कर नवीन और प्राचीन काव्य का रसास्वादन करा लोगों में सुरुचि का भाव उत्पन्न किया। सरकारी रिपोर्ट में उसकी प्रशंसा हुई और भाषा आदर्शरूप बताई गई। फिर 'हरिश्चन्द्र मैगेजीन' तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का उदय हुआ। इनमें इस प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों के नामी लेखकों के लेख प्रकाशित होते थे। भारतेन्दु जी के मित्र तो सभी जगह थे। स्थान स्थान के लेखक साहित्य-सेवियों ने स्वरचित लेख आदि प्रकाशनार्थ भेजकर इन पत्रिकाओं को लोक-प्रिय बना दिया। 'तदीय समाज' 'कवि-समाज' ने भी काशीवासियों में नये भावों का संचार किया और

काव्य की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। काशी में सरदार, सेवक, दीनदयाल गिरि आदि उत्तम कवि वर्त्तमान थे। वे सब कवि समाज में अपनी अपनी कृति का आनन्द देकर सभा की शोभा बढ़ाते थे। समस्या-पूर्ति होती थी। पारितोषिक और प्रशंसा पत्र भी बाँटे जाते थे। इस प्रकार 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' की तान सब जगह सुनाई देने लगी।

गद्य

हिन्दी में गद्य बहुत प्राचीन काल से मिलता है। खड़ी बोली का गद्य जटमल से भी पूर्व लिखा जाता था, परन्तु गद्य काव्य का प्रचार लल्लूजी लाल और सदलमिश्र के समय से विशेष कर हुआ है। भारतेन्दु से पूर्व राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह ने भी गद्य लिखा था; परन्तु प्रथम ने उर्दू फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग कर भाषा को विकृत बना दिया था और दूसरे ने केवल अनुवाद किये थे। सर्वांग सुन्दर गद्य पहिले ही पहिल भारतेन्दु जी ने ही लिखना आरम्भ किया और भाषा को ऐसा ज़ोरदार बना दिया कि सब विषयों के भाव व्यक्त करने की शक्ति उसमें आ गई। उनके गद्य में ऐसी सजीवता है कि लेखन-प्रणाली मानों सदा के लिए उन्होंने स्थिर कर दी है। जिस शैली को उन्होंने ग्रहण किया है, उसी की अब उन्नति हो रही है और वही बिना अपना स्वरूप बदले परिपक्व हो रही है। वे स्वयं इतने उत्तम गद्य लेखक थे कि उनसे बढ़ कर अभी तक कोई नहीं हुआ। जितना अधिकार भाषा पर उनको था वैसा शायद ही अभी तक किसी को प्राप्त हुआ हो। रोचकता का गुण भी उनके लेखों में विशेष रूप से विद्यमान है। ऐसा नहीं जान पड़ता कि उनकी भाषा परिश्रम-साध्य थी। सहज सरल रीति की शैली है जिसमें भावों के व्यक्त करने की पूर्ण शक्ति है और पढ़ने में मधुर और रोचक है। अतएव

उत्तम गद्य के जन्म-दाता आप ही कहे जा सकते हैं। जितना आपने पद्य लिखा है उससे कुछ कम गद्य नहीं लिखा। और अनेक विषयों पर आपने लेखनी उठाई है। इससे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि उन्होंने आधुनिक समय में गद्य के विकास की आवश्यकता समझ कर उसको उन्नत बनाने का पूरा उद्योग किया और केवल कविता की माधुरी पर मुग्ध होकर गद्य की उपेक्षा नहीं की। गद्य-ग्रन्थों के देखने से उनका नाना विषयक ज्ञान कैसा था, उनमें गम्भीर विचार की मात्रा कैसी थी यह भली प्रकार जान पड़ता है। नये ढँग की समालोचना भी उन्होंने ही सब से प्रथम हिन्दी में की थी। ग्रियर्सन साहब की राय में वे उत्तर भारत के पहिले समालोचक थे। नाटक पर जो लेख भारतेन्दु जी ने लिखा था वह इस बात का प्रमाण है। हिन्दी भाषा पर लेख भी इस दृष्टि से देखने योग्य है। आप का अच्छा गद्य-वैष्णव सम्प्रदाय संबंधी लेखों में है। और नाटकों में जो गद्यभाग आया है वह भी बड़ा भाव-पूर्ण है। इतिहास से भी आपको बड़ा प्रेम था। काश्मीर कुसुम' 'बादशाह दर्पण' 'उदय पुरोदय' आदि इतिहास विषयक ग्रन्थ आपने लिखे; जीवन चरित्र भी रोचक भाषा में कितने महापुरुषों के लिखे जो पाठकों को विशेष पसंद आए। 'चरितावली' की ग्रियर्सन साहब ने भी प्रशंसा की थी। इष्ट मित्रों को जो यात्रावर्णन के पत्र लिखे थे वे भी अत्यन्त रोचक हैं। इनके गद्य में हास्य भी मौजूद है और वह भी ऊँचे दर्जे का। 'रामायण का समय' लिख कर पुरातत्ववेत्ता होने का परिचय दिया है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि कैसे कैसे विषयों की आपको जानकारी थी और कितनी बातों से आपको दिलचस्पी थी। यहाँ स्थानाभाव से उनके गद्य में से कुछ उद्धृत नहीं किया जाता। 'भारत दुर्दशा' में भारत-विलाप नमूने के लिए अवलोकनीय है।

भारतेन्दु जी लिखते बहुत शीघ्र थे और अक्षर भी उनके बड़े सुन्दर थे। कहते हैं कि एक बार जो लिख देते थे उसको फिर दुहराते नहीं थे।

पद्य

यदि भारतेन्दु कवि तथा नाटक-कार न होते और केवल गद्य लिख कर ही हिन्दी की शैली स्थिर करते तो भी उनका कार्य एवं उपकार महान् होता। काव्य-रचना से उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, साहित्य में नये विषयों का समावेश किया और काव्य प्रेमियों को अनुपम आनन्द की सामग्री दी। परन्तु गद्य लिखकर उन्होंने विशेष उपकार किया है; क्योंकि इसके वे जन्म-दाता थे। भारतेन्दु ने संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी के अतिरिक्त देश की अन्य मुख्य भाषाओं को भी अच्छी प्रकार सीख लिया था। यहाँ तक कि वे उनमें कविता भी करते थे। संस्कृत में कविता तो विद्यार्थी अवस्था में ही करने लगे थे, विशेष कर समस्या-पूर्ति और किसी ने इतनी भाषाओं में कविता करने की सामर्थ्य प्राप्त की हो ऐसा सुना नहीं गया। भारतेन्दु जी के काव्य-गुरु पण्डित लोकनाथ जी थे। थोड़ी अवस्था में देशाटन का अवसर मिला था, पिता कवि थे और स्वयं प्रतिभा-सम्पन्न थे। इन कारणों से बाल्यकाल से ही काव्य की ओर रुझान हो गया और फिर पण्डित लोकनाथ जी ने उत्साह प्रदान किया। ब्रजभाषा के माधुर्य पर आप मुग्ध थे और उसकी सरसता की सराहने करते थे। मर्म-भेदी काव्य आपका ब्रजभाषा ही में हुआ है। फिर कोई विषय ऐसा नहीं जिसका समावेश इनकी रचना में न हो। पण्डित और काव्य-पारखी को प्रसन्न करने की रचना है और साथ साथ गलियों में गाने वाले अपढ़ लोगों के पसंद आने वाली भी मौजूद है। रसराज का साम्राज्य हो इसमें तो कोई आश्चर्य ही नहीं है।

इनका जीवन ही एक प्रेम-विह्वल व्यक्ति का सा था। प्रेम और भक्ति की कविता में नवीनता दिखाना या नये ढंग से इन भावों को ऐसे सांचे में ढालना कि उनमें बनावट का दोष न आवे, एक अति कठिन कार्य है। परन्तु भारतेन्दु जी के यह दोनों भाव बड़े प्रबल थे इसीलिए जगह जगह पर उनका प्रदर्शन होता है। भक्ति-रस की कविता अष्टछाप के कवियों की रचना का आनन्द दे जाती है। जिसका हृदय भक्ति और प्रेम में पगा न हो वह ऐसी कविता कर ही नहीं सकता। शब्द और भाषा पर अधिकार भले ही हो जाय परन्तु भावों को सजीव कर दिखाना और मन पर छाप लगा देना विरले ही कवि का काम है। और ऐसे ही एक कवि भारतेन्दु जी थे। उनकी कल्पना शक्ति का नमूना चन्द्रावली में जमुना वर्णन और नारद जी की बीणा के वर्णन से मिल सकता है। पद और कीर्तन की कोमल कान्त पदावली भाव-पूरित हृदय के लिए एक निधि है। कहीं 'इन अखियान दुनियाँ' का रोना देखकर कलेजा मुँह को आता है और करुणा का समुद्र उमड़ पड़ता है तो कहीं 'कहा करुणानिधि केशव सोए' का उलहना सुन कर अपनी हीन दशा का चित्र आँखों के सामने आता है। कहीं पर दोहा बिहारी की याद दिलाता है तो 'प्रेम-माधुरी' कृष्ण लीला का दर्शन कराती है। कोई रस नहीं जिसकी यहाँ वर्षा न हुई हो। भक्तमाल की पूर्ति की तो असली से जा मिलाया, काशी का वर्णन किया तो बनारसी ठगों की पोल खोली और उनको खूब छकाया। उत्तम कविता के जो गुण आचार्यों ने कहे हैं और जिनके बिना कविता मन में स्थान नहीं कराती वे प्रायः सभी भारतेन्दु की कविता में मिलते हैं। आपने कोई महाकाव्य नहीं रचा और सभी रचना एक उच्च श्रेणी की नहीं है; परन्तु उत्तम स्थलों को देखने से यह निश्चय हो जाता है कि भारतेन्दु का स्थान हिन्दी कवियों में बहुत ही ऊँचा है। उनके बाद अभी तक कोई कवि

ऐसा नहीं हुआ जो उनकी बराबरी का दावा कर सके। सामयिक घटनाओं पर भी यथा समय खूब लिखा है। हिन्दुओं की हीन दशा पर और देश की परतंत्र अवस्था पर सच्चे आंसू बहाये हैं। कलेजे में चोट थी कविता के उद्गारों में निकल पड़ी। अनोखे हँसाने वाले और साथ ही रुलाने वाले भारतेन्दु ही थे। अनुवाद भी किया तो कविता को रसहीन न होने दिया। वास्तव में इनकी कविता में ऐसी मोहिनी शक्ति है कि वह हृदय पर अधिकार जमा लेती है और मधुरता के साथ हिन्दी भाषा की शब्द शक्ति का पूर्ण परिचय देती है।

नाटक

हिन्दी में नाटक के जन्मदाता भी भारतेन्दु ही थे। संस्कृत में उत्तम से उत्तम नाटक हैं परन्तु यह खेद और आश्चर्य की बात है कि प्राचीन हिन्दी में एक भी स्वतंत्र अथवा अनूदित नाटक नहीं मिलता। नाटक की रचना तो प्रतिभा के पूर्ण विकास होने पर हुआ करती है और ऐसा होना परतंत्र देश में अति कठिन है। संभव है यह भी एक कारण नाटकों के अभाव का हो। भारतेन्दु से पूर्व केवल दोही नाटक हिन्दी में थे और वे दोनों अनुवाद थे। इनके पिता का 'राजा नहुष' और राजा लक्ष्मणसिंह का सुप्रसिद्ध 'शकुन्तला'। भारतेन्दु जी ने कुछ तो स्वतंत्र नाटकों की रचना की बाकी बँगला या अँग्रेजी से अनुवाद किये। कुल १८ नाटकों की रचना की जिनमें से दो इनके हैं या नहीं यह निश्चय नहीं है। दो तीन अपूर्ण भी रह गए हैं। 'भारत दुर्दशा' 'नील देवी,' चन्द्रावली इन्हों की स्वतंत्र रचना में से अति उत्तम हैं। अनुवादित में मुद्राराक्षस' 'भारत जननी' 'विद्या सुन्दर' 'धनञ्जय विजय' आदि बड़े मनोहर हैं। पद्य और गद्य दोनों ही का प्रयोग इनमें किया गया है। कथानक प्रायः बहुत रोचक हैं। अनुवादित भी स्वतंत्र रचना का आनन्द देते हैं और कभी कभी मूल से भी बढ़ जाते हैं।

मुद्राराक्षस इसी कोटि का है। 'चन्द्रावली' कवित्व तथा कल्पना-शक्ति का परिचय देने में मुख्यतः गणना-योग्य है और 'भारत-दुर्दशा' 'सत्यहरिश्चन्द्र' लोक-प्रिय होने के गुण रखते हैं। 'भारत-जननी' और 'भारत-दुर्दशा' कवि के स्वदेश एवं स्वजातीय प्रेम के सच्चे भावों के फल हैं। हमारी दुरवस्था के सच्चे चित्र इन दोनों में भली प्रकार खींचे हैं। करुणारस; जात्यभिमान के भावों में दोनों सराबोर हैं। भारतेन्दु जी ने अन्य भाषाओं से नाटकों का अनुवाद करने में कोई संकोच नहीं किया। क्योंकि अपनी कला में निपुण होने से अपनी कवित्व शक्ति का पूर्ण दिग्दर्शन करा सके थे। नाकट प्रायः सभी रंगमञ्च पर खेलने योग्य हैं और कुछ का अभिनय भारतेन्दु जी के सामने हुआ भी था और अब भी होता है। उनकी भाषा गद्य व पद्य के सम्बन्ध में विशेष कहने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। इस सम्बंध में ऊपर कहा ही जा चुका है। इतना ही कहना काफ़ी है कि कथानक की रोचकता से बढ़कर इनका काव्य है और उसमें भी विशेष कर वर्णन के स्थल और हास्य उल्लेखनीय हैं। परन्तु यह सब नाटक ऐसे ही हैं कि मानों किसी कहानी को नाटक का रूप दे दिया हो। केवल उत्तम कविता, यथावत् वर्णन और रोचक कहानी से ही उत्तम नाटक की रचना नहीं होती। नाटक-कार का सबसे बड़ा गुण मानव हृदय के गूढ़ और अव्यक्त भावों का स्पष्ट करना होता है और चरित्रों के परस्पर संघर्षण से अचिन्त्य घटनाओं से जो विशेष व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ते हैं उनकी छान-बीन कर जीते-जागते प्राणी का चित्र खींचना होता है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि भारतेन्दु के नाटकों में यह बातें हैं ही नहीं। हैं तो सही; परन्तु उनमें उतना बल नहीं है कि अपना पूरा प्रभाव सदा जमा सकें। कविता और वर्णन में जो चमक है उसके सामने चरित्र-चित्रण और गूढ़ मनोभावों का प्रदर्शन फीका पड़ गया है। द्विजेन्द्र-

लाल राय के नाटकों में जो बात है वह भारतेन्दु में नहीं है। परन्तु कितने खेद की बात है कि अभी कोई ऐसे नाटक-कार हिन्दी में नहीं हुए जिनकी कृति ने भारतेन्दु से विशेष सफलता-पूर्वक साहित्य के इस अङ्ग की पूर्ति की हो। हमारे लिए तो अभी भारतेन्दु जी के नाटक अनमोल रत्न हैं। भारतेन्दु जी तो पथ-प्रदर्शक थे और उन्होंने निर्दिष्ट मार्ग को साफ भी कर दिया था; परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि उस ओर हिन्दी लेखक अभी अग्रसर नहीं हुए हैं।

सत्य हरिश्चन्द्र

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की रचना संवत् १९३२ में हुई थी। काशीपत्रिका में प्रथम प्रकाशित हुआ था। भारतेन्दु जी के मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद जी के अनुरोध से यह नाटक लिखा गया था। बाबू साहब ने एक बार भारतेन्दु जी से बालकोपयोगी नाटक लिखने को कहा था और उसी का परिणाम 'सत्यहरिश्चन्द्र' हुआ। राजा हरिश्चन्द्र की कथा अति प्राचीन काल से इस देश में सुनी जाती है। सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र सत्य-प्रतिज्ञ थे और सत्य की रक्षा के लिए और अपने वचन-पालन में यदि प्राण भी जायँ तो वे भी अपनी प्रतिज्ञा भँग करने को तैयार नहीं थे। ऐसे सत्या-ग्रही के पुण्य प्रताप और तपस्या से इन्द्र को भय हुआ कि कहीं राजा हरिश्चन्द्र स्वर्ग के राजा बनकर इन्द्रासन न ले लें। ऐसे प्रतापी राजा का यश सुनकर भी इन्द्र को बड़ी ईर्ष्या होने लगी। उसने राजा को तपोभ्रष्ट करने की चाल चली। और इस कार्य में विश्वामित्र ने इन्द्र को सहायता देने का वचन दिया। विश्वामित्र ने योगबल से राजा हरिश्चन्द्र की स्वप्नावस्था में उसका समस्त राज्य दान में माँग लिया। प्रातःकाल जब राजा यह चिन्ता करता है कि स्वप्न में दान दिया हुआ राज्य किसी प्रकार उसी ब्राह्मण

को खोज कर दें कि विश्वामित्र आ पहुँचते हैं और राज्य माँगते और दक्षिणा भी ऊपर से चाहते हैं। राजा के पास अपना कोश भी नहीं। रानी और अपने पुत्र को साथ लेकर दक्षिणा के भार से मुक्त होने को राज्य से बाहर निकल जाते हैं; अन्त में राजा हरिश्चन्द्र काशी पहुँच कर अपने को एक डोम के हाथ बेच कर और रानी और पुत्र को अन्य स्थान में बेच कर विश्वामित्र की दक्षिणा चुकाते हैं। मुर्दों के जलाये जाने से पहिले अपने डोम स्वामी के लिए स्मशान पर कर वसूल करना हरिश्चन्द्र का काम था और उसकी रानी दासी का काम करती थी। इस असहनीय घोर परिवर्तन पर भी हरिश्चन्द्र ने सत्य का आग्रह नहीं छोड़ा और विश्वामित्र उसको किसी प्रकार सत्यभ्रष्ट नहीं कर सके। अकस्मात् राजा के पुत्र को साँप ने काट खाया और उसकी मृत्यु हो गई। रानी अत्यन्त विकल हो गई और बालक को अन्त्येष्टि क्रिया के लिए उसे स्मशान ले गई। उस दुखिया के पास एक कौड़ी भी नहीं थी जो स्मशान का कर देती। परन्तु हरिश्चन्द्र ने जब शव-दाह की आज्ञा न दी तब रानी अपने शरीर पर का एक मात्र वस्त्र आधा फाड़ कर कर-स्वरूप अपने पति को देने लगी तब साक्षात् भगवान् प्रकट हुए, विश्वामित्र जी ने अपना परिचय दिया और राजा हरिश्चन्द्र को सत्य की पूर्ण परीक्षा होने पर उनका राज्य मिला, पुत्र जीवित हो उठा और राजा हरिश्चन्द्र को ब्रह्मलोक तथा अक्षय यश की प्राप्ति हुई। इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र हिन्दु जाति के महान् आदर्श पुरुषों में से हैं। इसी कथा को भारतेन्दु जी ने नाटक रूप से लिखा है और वास्तव में जिस उद्देश्य से इस नाटक की रचना हुई थी उसके लिए राजा हरिश्चन्द्र से उत्तम चरित्र और कौन सा मिल सकता था।

भारतेन्दु जी ने सत्य-हरिश्चन्द्र की रचना आर्य्य क्षेमीश्वर के 'चण्ड कौशिक' नामक संस्कृत नाटक के आधार पर की है।

आर्य्य क्षेमीश्वर कन्नौज के राजा महिपाल देव के आश्रित थे। कौशिक नाम विश्वामित्र का है। इससे प्रतीत होता है कि 'चण्डकौशिक' में नायक विश्वामित्र हैं और उनका क्रोध आख्यान का मूल है। भारतेन्दु जी ने 'सत्य' का विशेषण हरिश्चन्द्र को देकर नाटक के नामकरण का ढँग एकसा रक्खा है परन्तु उनका नायक हरिश्चन्द्र है और उसकी सत्यनिष्ठा पर आख्यान निर्भर है। हरिश्चन्द्र की कथा अति प्राचीन काल से इस देश में प्रसिद्ध है। और इसके अतिरिक्त नारायण देव जी ने संवत् १४५३ में सत्य हरिश्चन्द्र की कथा हिन्दी में लिखी थी। पता नहीं कि भारतेन्दु जी ने इसे देखा था या नहीं; परन्तु यह तो निश्चय है कि 'चण्ड-कौशिक' के आधार पर हिन्दी नाटक की रचना हुई है। यह भारतेन्दु जी की स्वतंत्र रचना मानी जाती है; परन्तु बहुत से स्थल ऐसे हैं जहाँ 'चण्डकौशिक' का भाव ज्यों का त्यों ले लिया गया है और बहुत स्थानों में बिलकुल अनुवाद दे दिया गया है। कथा में थोड़ा अन्तर अवश्य है कहीं कहीं पर अनुवाद मूल संस्कृत से उत्तम भी हो गया है। परन्तु इतने पर से यह नहीं कहा जा सकता है कि 'सत्य हरिश्चन्द्र' एक बिलकुल स्वतंत्र रचना है। पात्रों में भी बहुत कुछ समता है। चण्डकौशिक भारतेन्दु जी के सम्मुख बराबर रहा होगा जब हिन्दी नाटक की रचना की गई थी। आरम्भ और अन्त में भिन्नता है; मध्य भाग तो दोनों का बहुत ही मिलता है। संस्कृत नाटक शिथिल है और हिन्दी का नाटक विशेष रोचक है। जो स्थल भारतेन्दु जी के स्वतंत्र हैं वे ही उनकी कृति को विशेष रोचक बना सके हैं। नितान्त स्वतंत्र रचना भी हो तो भी सत्य हरिश्चन्द्र बहुत उत्तम बना है। और किसी कवि या नाटक-कार की मौलिकता में कोई बट्टा इस बात से नहीं लग सकता कि उसकी कृति में दूसरे कवियों के भाव मौजूद हैं वा किसी आधार पर उसकी रचना है। भारतेन्दु जी अनुवाद कर लेने में कुछ

संकेत नहीं करते थे। इसी लिए चण्डकौशिक की छाया पड़ने पर भी 'सत्य हरिश्चन्द्र' कला-हीन नहीं हो जाता।

किसी नाटक का विवेचन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि नाटक एक दृश्यकाव्य है। उपन्यास, कविता आदि पढ़ने के लिए लिखे जाते हैं और नाटक मुख्यतः अभिनय के लिए। जब तक नाटक रंग-मञ्च पर खेला न जाय तब तक नाटक-कार की निपुणता का ठीक ठीक पता नहीं चलता। नाटक को सफल बनाने में रंग-मञ्च और पात्रों की भी आवश्यकता होती है। नाट्य-कला की दृष्टि से कुछ मुख्य गुणों के बिना कोई नाटक सफल नहीं कहा जा सकता। कथानक के साथ मुख्य बात जो नाटक में होनी चाहिए वह चरित्र-चित्रण है। किसी घटना वा कथानक का आधार लेकर नायक-नायिका और अन्य पात्रों के मनोभावों को यथावत् व्यक्त कर उनके चरित्र का वर्णन करना नाटक-कार का मुख्य उद्देश्य होता है। मानव हृदय के रहस्यों का ज्ञान, परिस्थिति और मनुष्य स्वभाव पर उसका प्रभाव ज्यों के त्यों दर्शकों को दिखाने में यदि सफलता प्राप्त कर ले तभी नाटक-कार अपने को कृतकृत्य समझता है। उसका कार्य इस कारण और भी कठिन हो जाता है कि कवि को स्वयं अपने भावों को दबा रखना पड़ता है। उपन्यासकार तो अपनी राय जब चाहे प्रदर्शित कर सकता है; परन्तु अपनी कृति में नाट्य-कार का कोई स्थान नहीं होता। फिर समय और सीमा के बंधन को नाटक-कार उल्लङ्घन नहीं कर सकता। बहुत सी बातें उसे इशारे वा अत्यन्त सूक्ष्मता से कहनी पड़ती हैं। कथानक में यथेष्ट विस्तार नहीं हो सकता। पात्रों में यदि समानता आ गई वा चरित्र-चित्रण सजीव न हुआ तो नाटक कभी रोचक नहीं हो सकता। कवित्व और कल्पना-शक्ति के अतिरिक्त मनुष्य स्वभाव का ज्ञान और संसार का सूक्ष्म अनुभव नाटक-कार के लिए परमावश्यक है। इन्हीं सब कारणों से उच्च श्रेणी के

नाटक इने गिने निकलते हैं। यह कला बड़ी कठिन है और बिना प्रतिभा के इसमें सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

इस नाटक में केवल चार पात्र ऐसे हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है। वे हैं—राजा हरिश्चन्द्र, रानी शैव्या, विश्वामित्र और राजपुत्र रोहिताश्व। अन्य पात्र कथानक के लिये आवश्यक हैं परन्तु चरित्र-चित्रण इन्हीं का अवलोकनीय है जिससे नाटक-कार की प्रतिभा का पता चलता है।

राजा हरिश्चन्द्र

नाटक के प्रारम्भ में ही राजा हरिश्चन्द्र का गुणगान नारद जी करते हैं कि उसका सत्य-विचार कदापि नहीं टल सकता। हरिश्चन्द्र केवल सत्य-निष्ठ ही नहीं हैं उनमें महापुरुषों के और भी गुण विद्यमान हैं। वे दृढ़-प्रतिज्ञ भी हैं। स्वप्न में दिये हुए दान के संबंध में उनको व्यर्थ चिन्तित देख कर रानी उलाहना देती है तो भी वे ब्राह्मण की खोज के लिए व्याकुल होते हैं। अभिमानी हरिश्चन्द्र देह, दारा और सुअन को भी बेच कर दक्षिणा चुकाने को तैयार ही नहीं बल्कि उसको कर डालने में तत्पर हो जाते हैं। राजा हृदय-हीन वा कठोर-हृदय व्यक्ति नहीं हैं। रानी और पुत्र से स्वाभाविक प्रेम है। उनकी हीन दशा देख कर कई बार साधारण मनुष्य की तरह वे घबरा भी उठते हैं। परन्तु स्वार्थ और आत्मीय जनों के प्रेम के सामने धर्म को नहीं भूलते। प्रतिज्ञा और सत्य-निष्ठा पर वे स्त्री और पुत्र को बलि देने में संकोच नहीं करते। ब्राह्मण को धन देने में अथवा उसका ऋण चुकाने में विलंब करने से वे बहुत डरते हैं। क्षत्रिय और वह भी फिर सूर्य वंशी होकर हरिश्चन्द्र को अधर्म और ब्राह्मण के शाप का ही भय है और किसी का भय नहीं है। विश्वामित्र के व्यर्थ क्रोध करने पर भी उनके लिए न तो किसी अपशब्द का व्यवहार करता है और न परोक्ष में ही उनके लिए कोई कटु वाक्य कहता है। विश्वामित्र

उसके साथ सब प्रकार अनीति करने को ही धर्म समझते हैं और राजा अपनी सहन-शीलता और उदारता का परिचय देता है। जितने विश्वामित्र बिगड़ते हैं उतनी विनय राजा दिखाता है। रानी के बिक जाने पर जो शिक्षा राजा ने उसे दी है वह भी उनके धैर्य और धर्म की द्योतक है। उपध्याय की सेवा करने का ही आदेश रानी को देते हैं। और कैसा मर्मस्पर्शी उपदेश दिया है कि अपने कुल और जाति को विस्मरण न करना। फिर चाहे जैसी दास-वृत्ति स्वीकार करनी पड़े उससे हानी नहीं।

स्वयं स्मशान पर पहुँच कर संसार की अनित्यता का ध्यान राजा को आता है। धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ खो बैठने पर वैराग्य के भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परन्तु वहाँ भी अपना कर्त्तव्य और स्वामि-सेवा का ध्यान उन्हें बराबर बना रहता है। धर्म भी उनकी प्रशंसा करता है। जब स्मशान पर महाविद्याएँ उनके वश होती हैं तो वे उनको विश्वामित्र के वश-वर्त्तिनी होने की आज्ञा देते हैं। महानिधान सिद्ध होता है तो वह स्वामी के लिए है। स्वयं स्वीकार नहीं करते। जब शैव्या रोहिताश्व का शव लेकर स्मशान में आती है तो उसके विलाप से राजा को दुःख होता है। कष्ट और यातनाओं ने उनको हृदयहीन नहीं बना दिया है। स्वपुत्र की मृत्यु सुनकर अत्यंत दुःखी होते हैं परन्तु ऐसी व्याकुल अवस्था में भी अपने कर्त्तव्य और स्वामी के कर को नहीं भूलते। शैव्या के कहने पर भी वे कर छोड़ने को तैयार नहीं और यही उनकी अन्तिम परीक्षा थी। राजा हरिश्चन्द्र पर असाधारण विपत्तियाँ पड़ीं और उनको उन्होंने धर्म की टेक के लिए सहन भी किया; परन्तु जैसा चित्र नाटक-कार ने राजा का खींचा है उससे हमारे हृदय में राजा के लिए ऐसी करुणा उत्पन्न होती है जैसी कि संसार में साधारण व्यक्तियों को दुःखी देख कर होती है।

रानी शैव्या

राजा हरिश्चन्द्र की रानी उन्हीं के अनुरूप थी। यदि राजा दृढ़-प्रतिज्ञ और सत्य-प्रिय थे तो रानी शैव्या भी वैसी ही पति-परायणा थी। जो विपत्ति राजा पर पड़ी वही रानी को भी झेलनी पड़ी, परन्तु रानी एक स्त्री थी। स्वभाव की कोमलता के कारण राजा की अपेक्षा उसको कष्ट विशेष हुआ होगा, परन्तु आपत्ति में उसका धैर्य राजा से किसी प्रकार कम नहीं था। दुःस्वप्न से जो अधीर हो उठी थी उसको आगे कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े। राजा आग्रह करता है कि स्वप्न में दिया दान वैसा ही है जैसा कि जागते में दिया गया तब रानी चुपचाप मान लेती है। जब बिकने का समय आता है तब रानी पहिले स्वयं बिकने को कहती है और ऐसा ही होता भी है। बालक की बात उसको अधीर कर देती है और स्वामी का वियोग भी असहनीय होता है। परन्तु यह सब स्वामी की आज्ञा है, धर्म-पालन इसी में है, कुल और वंश की मर्यादा ऐसी ही है इन सब बातों का विचार कर धीरज रखती है और जो दैव करे उसे सहने को तत्पर होती है। सीता जी से शैव्या की व्यथा किसी प्रकार कम नहीं है। बिकने के समय वह स्पष्ट कहती है कि सब सेवा करेगी, पर-पुरुष-संभाषण नहीं करेगी। रोहिताश्व के मरने पर शैव्या का विलाप बड़ा करुणा पूर्ण होता है। नाटक-कार ने उसे ऐसा करुणा-पूर्ण बनाया है कि आँखों में आँसू आ जाते हैं। जो राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रतिज्ञा के लिए कर सकते वही रानी अपने पति की प्रसन्नता के लिए कर सकती है। यदि शैव्या जैसी अनुगामिनी रानी हरिश्चन्द्र की न होती तो उनको अपनी प्रतिज्ञा का पालन असंभव हो जाता।

रोहिताश्व

रोहिताश्व न तो पिता की प्रतिज्ञा समझता है और न घर बार

छोड़ कर परदेश जाने का कारण जानता है। जहाँ माता पिता हैं वहीं उसका घर है। परन्तु विश्वामित्र की क्रोध-ज्वाला ने बेचारे रोहिताश्व को भस्म करने में कुछ कसर नहीं उठा रखी। इसके तो तक्षक ने प्राण ही ले लिये। काशी के बाज़ार में सिर पर तृण रख कर राजा हरिश्चन्द्र और शैव्या अपने को बेचने के लिए फेरी देते हैं तो रोहिताश्व भी अपनी तोतली बोली से कहता है "अमको बो कोई मोल ले तो बला उपकाल हो"। अनसमझ बालक माता पिता की विपत्ति को समझता ही नहीं; वरन् उनको अपने कारण और भी चिन्तित और दुःखी बना लेता है। मनुष्य अपनी विपत्तियों को सहन कर लेता है। परन्तु आत्मीय जन जो अपने आश्रित हैं उनको दुःखी नहीं देख सकता। राजा हरिश्चन्द्र भी शैव्या और रोहिताश्व के कारण अत्यन्त दुःखी होते हैं। रोहिताश्व का पिता को छोड़ कर माँ के साथ बिक जाना बड़ा करुणा-पूर्ण है और जब वह अपनी माता से उसके बार बार रोने का कारण पूँछता है तब हृदय को व्याकुल कर डालता है। जितना उसमें भोलापन है उतना ही अधिक वह विश्वामित्र के क्रोध का शिकार है।

विश्वामित्र

राजा हरिश्चन्द्र के पुण्य प्रताप से इन्द्र का भयभीत होना स्वाभाविक है। परन्तु विश्वामित्र को हरिश्चन्द्र से क्या द्वेष हुआ स्पष्ट नहीं है। इन्द्र के बहकाने में आकर वे उसके इशारे में नाचने लगे। उनका क्रोध अकारण है। स्वप्न में राज्य छल कर उन्होंने हरिश्चन्द्र को व्यर्थ ही कटुवाक्य कहे हैं। उनकी नियत पर अविश्वास किया है। जो कड़ी बातें समय समय पर विश्वामित्र ने कही हैं वे साधुता के विरुद्ध हैं। जो कठोर शब्द कहे हैं उनके लिए राजा ने उनको कभी मौका नहीं दिया था। राजा के विनयशील आदि से विश्वामित्र का क्रोध शान्त नहीं होता वरन् विफल परिश्रम होने से वे अधिक उत्तेजित होते जाते हैं। इसी कारण राजा के प्रति हमारी

सहानुभूति होती है और विश्वामित्र के कठोर वर्ताव से घृणा होती है। जब एक महीने का अवसर दक्षिणा चुकाने का था उससे पहिले ही राजा को तंग करने का नीच व्यवहार महात्मा क्यों करते हैं। इन्द्र का दोष क्षम्य है, परन्तु विश्वामित्र तो अपने को विश्व के शत्रु साबित करते हैं। शाप की धमकी बार बार देकर अपनी तपस्या पर वे कलंक लगाते हैं। एक बार उन्होंने अपने मन में राजा की महानुभावता की प्रशंसा की है। जब राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र से पैरों पकड़ कर प्रार्थना करता है कि चाण्डाल होने से बचावें और राजा को स्वयं अपना दास बना लें तब विश्वामित्र कहते हैं "स्वयंदासास्तपस्विनः" इन शब्दों को कहने में उनको लज्जा नहीं आती! चाण्डाल के यहां बिकवाकर और सब काम करने की राजा से प्रतिज्ञा लेकर ही उनको शान्ति होती है। इतने पर भी जब वे सफल मनोरथ नहीं होते बालक रोहिताश्व के प्राण लिये जाते हैं। अन्त में तो राजा अपनी कड़ी परीक्षा में पार उतरते ही हैं; परन्तु नाटक के पढ़ने वालों को तृप्ति नहीं होती क्योंकि विश्वामित्र चाहे जैसे ऋषि रहे हों हरिश्चन्द्र के साथ ऐसा कपट और क्रूर व्यवहार करने के लिए उन्हें कोई दण्ड नहीं मिलता। राजा हरिश्चन्द्र को तो रानी, पुत्र और राजपाट मिला। भगवान् के दर्शन भी मिले। वे भले विश्वामित्र का उपकार ही मानें, परन्तु हमको तो घोर दण्ड के भागी मालूम होते हैं और उनको उचित शिक्षा न मिलने से मन को असन्तोष होता है।

इस नाटक के संबंध में पात्रों के अतिरिक्त कुछ और बातें भी उल्लेखनीय हैं उन्हीं का संक्षेप में अब वर्णन किया जाता है। प्रस्तावना में नटी और सूत्रधार के मुख से कवि ने अपनी प्रशंसा कराई है और वह बड़ी ही मधुर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजा हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु में केवल नाम ही की समता नहीं

थी। कुछ गुण भी दोनों में विराजमान थे। भारतेन्दु जी के मित्र इस बात की साक्षी देते हैं। बन्दीजन की विरदावली और राजा के गुणगान से प्राचीन काल की झलक दिखाई दे जाती है। और संस्कृत में जो आशीर्वचन और शान्ति पाठ ब्राह्मण ने किया है वह प्रथा के अनुसार ही है; परन्तु उसमें कुछ विस्तार अधिक हो गया है। पाप का काशी में स्थान पाने का वर्णन है वह मनोहर है और उसमें कुछ कटाक्ष और हास्य भी है। वैसे तो काशी का वर्णन जी खोल कर कवि ने किया है और वह भी अपने और गिरधरदास जी अपने पिता के शब्दों में। यह वर्णन बड़ा ही उत्तम और कविता भी मनोहारिणी है। फिर हरिश्चन्द्र और शैव्या का विछोह बड़ा मर्म-स्पर्शी है। राजा से रंक होना और फिर स्त्री पुत्र को बेच कर स्वयं दास-वृत्ति स्वीकार करना। ऐसी काया पलट के वर्णन में शिथिलता नहीं आने पाई। कवि ने इस स्थल को खूब निभाया है। बड़ा करुणा-पूर्ण वर्णन है और इससे भी बढ़ कर शैव्या का रोहिताश्व के लिए विलाप है उसको पढ़ कर मन का धीरज छूट जाता है। स्मशान वर्णन भी वीभत्स रस में डूबा हुआ है। जो मन की दशा स्मशान देखने से होती है वही कवि के शब्दों के पढ़ने से हो जाती है। कैसा भयानक वर्णन है! और स्मशान पर जो भाव हरिश्चन्द्र के चित्त में उठते हैं उनमें संसार की परिवर्तन-शीलता और अनित्यता से जो वैराग्य उत्पन्न होता है उसका स्वाभाविक दिग्दर्शन कराया है। यह अंश बड़ा ज़ोरदार है और मन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। शोक और करुणारस इस नाटक में प्रधान हैं और इस आघात को कम करने के लिए कहीं कहीं पाठक के मन को विश्राम मिलता है जैसे काशी वर्णन और काशी वासियों की अपनी बोलचाल की भाषा व्यवहार करने में। महाविद्या, धर्म, विघ्न आदि मनुष्येतर पात्र इसमें बहुत आते हैं परन्तु कथा ही ऐसी है जिसमें इनका समावेश आवश्यक है।

इस नाटक से शिक्षा भी प्राप्त होती है। केवल मनोरंजन की ही सामग्री इसमें नहीं है। रंगमञ्च पर यह भारतेन्दु के सामने खेला भी गया था और भी इसका अभिनय हुआ करता है। भारतेन्दु को तो अपने नाटकों में अधिक प्रिय था ही परन्तु औरों को भी यह अति प्रिय है। इसको लोक-प्रियता का परिचय नाटककार को अपने जीवन काल में मिल गया था।

याज्ञिक बन्धु

समर्पण

नाथ !

यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्य-पथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं, यही इसमें दिखाया है। भला हम क्या कहें? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा, पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना। हमारी करतूत तो कुछ नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है। बस, इतना ही सही। लो, सत्य-हरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित है, अंगीकार करो। छल मत समझना। सत्य का शब्द साथ है, कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।

तुम्हारा

हरिश्चन्द्र

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद, बी० ए०, ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो, क्योंकि शृङ्गाररस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं के इच्छानुसार मैंने यह सत्यहरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इसमें सूर्य्य-कुलसम्भूत राजा हरिश्चद्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य्यवंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचन्द्र से ३५ पीढ़ी पहिले त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चण्डकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए, क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य-ग्रन्थ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन्य-समेत उसकी ज़ाफ़त अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधाम से की तब विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हज़ारों हाथी, घोड़े और ऊँट के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना का नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिये। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेवजी से वरदान में

सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आये। वशिष्ठ ने मन्त्र के बल से एक ऐसा ब्रह्म-दण्ड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और तप करके अन्त में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गये। यह वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के ५२ से ६० सर्ग में सविस्तृत वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठजी से कहा तब उन्होंने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हमसे न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उनसे भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं की और हमको कोरा जवाब दिया, इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चाण्डाल हो जा। बेचारा त्रिशंकु चाण्डाल बनकर विश्वामित्र के पास गया और दुःखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोच कर राजा से प्रतिज्ञा की कि इसी देह से तुमको स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आये, पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये और कहा कि जहाँ चाण्डाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देख कर और बेचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मन्त्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ भाग लेने न आये तब विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु! यज्ञ से कुछ काम नहीं, तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही

आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आया चाहता है तब पुकारा कि अरे तू यहाँ आने के योग्य नहीं है, नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र को त्राहि त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप-बल से उसको वहाँ बीच ही में स्थिर रक्खा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिणध्रुव के समीप सप्तर्षि सौर नक्षत्र इन्होंने नये बनाये और बहुत से जीव-जन्तु, फल-मूल बनाकर जब इन्होंने इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर क्षमा माँगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रख-कर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति प्रकाश-मान स्थिर रख क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा, इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चाण्डाल के घर भीख माँगने गये और जब कुत्ते का माँस पाया तब उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इनके भय से काँप गये और इन्द्र ने उस समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शान्तिपर्व्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुन कर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी*हो जाओ। पक्षी बन कर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया, जिससे त्रैलोक्य काँप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मार्कण्डेय पुराण के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है—भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किये देखा तब बड़े प्रसन्न

* किसी जाति का गिद्ध।

हुए और बेटा, बहू देखने को उनके घर आये। उन दोनों ने पिता को पूजा की और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। भृगु नें बहू से कहा कि बेटी, वर माँग। सत्यवती ने यह वर माँगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जाननेवाला और मेरी माता को युद्ध-विद्याविशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान दे प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरू उसी भाँति उदुम्बर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझ कर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा, जब ऋतु-काल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद अपने खाया। भगवान् भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट-पलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियकर्म्मा होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा। सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। वही राजा गाधि को विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिकापुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से नाटक के पढ़नेवालों को बड़ी सहायता मिलेगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं में हम लोगों के पूर्व पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे। यह समझकर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

सत्य-हरिश्चन्द्र

मंगलाचरण

दोहा

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकन्द।
जनहित कमलातजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द* ॥ १ ॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार† आता है)

सू०—अहा! आज की संध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विधा का प्रकाश कि जहां के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे। भला वहां अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु हा! सोच की

---

* यह श्लेष शिव जी राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पाँच का वर्णन करता है।

† सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जाँघिया पहिने उसके आगे पटुके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहने, सिर पर टिपारा, पैर में घुंघुरू, हाथ में छड़ी, पाँव में पैजामा, काछनी, सिर पर मुकुट।

बात है कि जेा बड़े-बड़े लेाग हैं और जिनके किये कुछ हेा सकता है वे ऐसी अन्ध-परम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखानी या लम्बा-चौड़ा गाल बजाना आता है। (कुछ सेाच कर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो येां भी बहुत कुछ हेा रहेगा। काल बड़ा बली है, धीरे-धीरे सब आप ही कर देगा। पर भला आज इन लेागों को लीला कौन सी दिखाऊँ। (सेाच कर) अच्छा, उनसे भी तेा पूछ लें? ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। (नेपथ्य की ओर देखकर) मोहना! अपनी भाभी को ज़रा इधर तेा भेजना।

(नेपथ्य में से, मैं तेा आप ही आती थी, कहती हुई नटी* आती है)

न०—मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी, उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तेा अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए, आज जेा लीला करनी हेा वह पहले ही से जानी रहे तेा मैं और सभी से कह के सावधान कर दूँ।

सू०—आज का नाटक तेा हमने तुम्हारी प्रसन्नता पर छेाड़ दिया है।

न०—हम लेागों को तो सत्यहरिश्चन्द्र आजकल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छेाटे-बड़े को मँज रहा है।

---

* महाराष्ट्री भेष, कमर पर पेटी कसे वा मर्दाना कपड़ा पहिने पर ज़ेवर सब ज़नाने।

सू०—ठीक है, यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा-पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एकमात्र जीवन है।

न०—(लम्बी साँस लेकर) हा ! प्यारे, हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण-रूप न समझा। क्या हुआ "कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि-भरि पाछे प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि जायगी।"

सू०—इसमें क्या सन्देह है काशी के पण्डितों ही ने कहा—

सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द—
जिमि सुभाव दिन रैन के, कारन नित* हरिचन्द† ॥२॥

और फिर उनके मित्र पण्डित शीतलाप्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी की है इससे उनके बनाये नाटकों में भी सत्यहरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

न०—कैसी समता, मैं भी सुनूँ।

सू०—जेा गुन नृप हरिचन्द में, जग हित सुनियत कान।
सेा सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान‡ ॥३॥

---

* हरि—सूर्य।

† "विद्वज्जनप्रतिष्ठाकारणमेको हरिश्चन्द्रः।
यद्वत् स्वभावगत्या दिनरात्र्योर्वा हरिश्चन्द्रः।"

‡ "श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने ॥"

(नेपथ्य में)

अरे !

यहाँ सत्य भय एक के, काँपत सब सुरलोक ।
यह दूजो हरिचन्द को, करन इन्द्र उर सोक ॥ ४ ॥

सू०—(सुनकर और नेपथ्य की ओर देख कर) यह देखो ! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुँचा, तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

प्रथम अंक

जवनिका उठती है।

(स्थान—इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र* आता है)

इ०—("यहाँ सत्य भय एक के" यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर-उधर घूमता है।)

(द्वारपाल† आता है)।

द्वा०—महाराज ! नारदजी आते हैं।

इ०—आने दो, अच्छे अवसर पर आये।

द्वा०—जो आज्ञा (जाता है)।

इ०—(आप ही आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं, इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि उसके धर्म्म की एक बेर परीक्षा तो लेना चाहिये।

(नारदजी‡ आते हैं)

इ० –(हाथ जोड़कर दण्डवत करता है) आइए, आइए, धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े ?

---

*जामा, किरीट, कुण्डल और गहने पहने हुए हाथ में वज्र (कई फूलों की छोटी माला) लिये हुए।

† छड्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पाजामा पहने, कमरबन्द कसे और हाथ में आसा लिये हुए।

‡ धोती की लाँग कसे, गाती बाँधे, सिर से पाँव तक चन्दन का खौर दिये, पैर में घुंघरू, सिर के बाल छूटे और हाथ में बीन लिये हुए। आने और जाने के समय "रामकृष्ण-गोविन्द" की ध्वनि नेपथ्य में से हो।

ना०—हमें और भी कोई काम है ? केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ, यही हमें है कि और भी कुछ ?

इ०—साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं, विशेष करके आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं। क्योंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं, कि साधुसङ्गम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे, न कहीं जायँगे।

ना०—आपको इतना शिष्टाचार नहीं सोहता आप देवराज हैं और आपके सङ्ग की तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इच्छा करते हैं, फिर आपको सत्सङ्ग कौन दुर्लभ है? केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह देखा व्यवहार होता है वैसी बातें आप इस समय कर रहे हैं।

इ०—हमको बड़ा सोच है कि आपने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिये, आपसे हम बनावट नहीं करते। भला बिराजिए तो सही; ये बातें तो होती ही रहेंगी।

ना०—बिराजिए (दोनों बैठते हैं)।

इ०—कहिए, इस समय कहाँ से आना हुआ ?

ना०—अयोध्या से। अहा ! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उसके निष्कपट और अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्यकुल में अनेक बड़े-बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है।

इ०—(आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

ना०—महाराज ! सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्त्ति है। निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत-भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इ०—(आप ही आप) अहा! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है! यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुण-ग्राही हो, तथापि दूसरों की उत्कट कीर्त्ति से इसमें ईर्ष्या होती है, उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्ष्या उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना सन्ताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्त्ति।

ना०—आप क्या सोच रहे हैं?

इ०—कुछ नहीं। योंही, मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्त्ति आजकल छोटे-बड़े सबके मुँह से सुनाई पड़ती है, इससे निश्चय होता है कि नहीं, हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है।

ना०—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे-बड़े सब मानें और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म्म-साधन करेगा (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं, क्योंकि जिससे बड़े-बड़े लोग डाह करें, पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें, वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ०—भला! उसके गृह-चरित्र कैसे हैं?

ना०—दूसरों के लिए उदाहरण बनाने के योग्य। भला पहले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं उसकी और बातों पर क्यों विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन में उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्म्मनिष्ठ क्यों न हो, पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में

वह टकसाल न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म्म एक रहते हैं, इनके भिन्न-भिन्न। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय है। उसके आशय बहुत उदार हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

इ०—भला! आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं?

ना०—जिसका भीतर-बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है, वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर सन्तोष नहीं होता, यह समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।

इ०—(आप ही आप) हृदय! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना०—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उसमें ऐसी है जो सबका भूषण है, क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राजकाज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है, छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है, पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उनके समय

व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बँटे रहते हैं जिससे उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इ०—भला महाराज! यह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है?

ना०—यही तो हम कहते हैं। निस्सन्देह यह राजा कुल का कलंक है, जिसने बिना पात्र विचारे दान देते देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं, जो वह नाश हो गया और जहां प्रबन्ध है वहां धन की क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और याचक कितना लेंगे।

इ०—पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर मांगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व-हानि होती हो, तो वह दे कि नहीं?

ना०—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहां हुआ?

इ०—(आप ही) भला देखेंगे न।

ना०—राजन्! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज स्वभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बँधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ग भी तिलसा दिखाई देता है। और उसमें भी हरिश्चन्द्र—जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है, भला उससे न्याय कब होगा? और जिसमें न्याय नहीं है, वह राजा ही काहे का है? कैसी भी विपत्ति और उभय संकट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो, पर

न्याय न छोड़े, वही धीर और वही राजा। और उस न्याय का मूल सत्य है।

इ०—तो भला वह जिसे जो देने कहेगा देगा, वा जो करने को कहेगा वह करेगा?

ना०—क्या आप उसका परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में शंका ही उसकी निन्दा है। क्या आपने उसका यह सहज सा अभिमान वचन नहीं सुना है?

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द का, टरै न सत्य विचार॥

इ०—(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला। (प्रकट) हाँ! पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म्म स्वर्ग लेने को करता है?

ना०—वाह! भला जो ऐसे हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है? क्या बड़े लोग धर्म्म स्वर्ग पाने को करते हैं? जो अपने निर्म्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु है? फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म्म करते हैं? वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और जिन लोगों को भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्म्माचरण करते हैं? यह भी तो क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इ०—(आप ही आप) हमने माना कि उसको स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

ना०—और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आप सन्तोष मिलता है उनके उस असीम आनन्द के आगे आपके स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महातुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं?

इ०—तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना०—राजन्! आपको यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आपको बड़ा किया है, तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष करना चाहिये। ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझे।

इ०—(आप ही आप) इनसे काम न होगा। (बात बहलाकर, प्रकट) नहीं, नहीं मेरी इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता, भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिससे उन्हें कुछ कष्ट हो?

ना०—(आप ही आप) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है, पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं, वह आदर के योग्य नहीं; परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर जिसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराज! विश्वामित्र जी आये हैं।

इ०—(आप ही आप) हाँ, इनसे यह काम होगा। अच्छे अवसर पर आये। जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिए। (प्रकट) हाँ, हाँ लिया लाओ।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

(विश्वामित्रजी* आते हैं)

इ०—(प्रणामादि शिष्टाचर करके) आइए भगवन् विराजिए ।

वि०—(नारद जी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं)

ना०—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम से जाना है ।

वि०—यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ?

ना०—हरे ! हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं । राम-राम, भला आपके आने से हम क्यों जायँगे ? मैं तो जाने ही को था इतने में आप आ गये ।

इ०—(हँस कर) आपकी जो इच्छा ।

ना०—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या—अब तो आप ही की इच्छा है कि हम जायँ, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्रजी से राजा हरिश्चन्द्र को दुख देने की सलाह कीजियेगा, तो हम उसके बाधक क्यों हों ? पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं, उतना ही उनकी सत्य-कीर्त्ति तपाये सोने की भाँति और भी चमकती है, क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती । (प्रकट) यद्यपि "जो इच्छा" आपने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते, क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है । मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्रभाव से कहता हूँ । लो, जाता हूँ और यही आशीर्वाद देकर जाता हूँ कि तुम किसी को

---

* मृगचर्म, दाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमण्डलु, खड़ाऊँ पर चढ़े ।

कष्टदायक मत होओ, क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

इ०—(कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है)

(नारदजी जाते हैं)

वि०—यह क्यों? आज नारद भगवान् ऐसी जली-कटी क्यों बोलते थे? क्या तुमने कुछ कहा था?

इ०—नहीं तो, राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्त्ति को सहन न कर सका, इसमें कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गये।

वि०—तो हरिश्चन्द्र में कौन से गुण हैं?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है)

इ०—(ऋषि का भ्रूभंग देखकर चित्त में सन्तोष करके उनका क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज! सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें, चाहे घटा दें। भला सत्यधर्म्म-पालन क्या हँसी-खेल है? यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है, जिन्होंने घर-बार छोड़ दिया है। भला राज करके और घर में रहके मनुष्य क्या धर्म्म का हठ करेगा! और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती। इन्हीं बातों से तो नारदजी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

वि०—मैं अभी देखता हूँ न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा!

(क्रोधपूर्वक उठकर चला चाहते हैं कि परदा गिरता)

इति प्रथम अङ्क

दूसरा अङ्क

(स्थान—राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन)

(रानी शैव्या* बैठी हैं और एक सहेली बग़ल में खड़ी है†)

रा०—अरी ! आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा काँप रहा है। भगवान् कुशल करें।

स०—महाराज के पुण्य-प्रताप से सब कुशल ही होगी, आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है, मैं भी सुनूँ !

रा०—महाराज के तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाये देखा है और अपने को बाल खोले, और (आँखों में आँसू भरकर) रोहिताश्व को देखा कि साँप काट गया है।

स०—राम ! राम ! भगवान् सब कुशल करेगा। भगवान् करे रोहिताश्व जुग-जुग जिये और जब तक गंगा यमुना में पानी है आपका सोहाग अचल रहे। भला आपने इसकी शान्ति का भी कुछ उपाय किया है ?

रा०—हाँ, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है, देखो, वह क्या करते हैं।

स०—हे भगवान् ! महारे महाराज, महारानी, कुँवर सब कुशल से रहें, मैं आँचल पसार के वरदान माँगती हूँ।

(ब्राह्मण‡ आता है)

ब्रा०—(आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु।
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ॥

---

* लहँगा, साड़ी, सब जनाना गहना, बन्दी बेना इत्यादि।

† साड़ी, सादा सिंगार।

‡ धोती, उपरना, सिर पर चूंदी वा सिर पर बाल, डाढ़ी, हाथ में पवित्री, तिलक, खड़ाऊँ।

ऐश्वर्य्यमस्तु कुशलोस्तु रिपुक्षयोस्तु ।
सन्तानवृद्धिसहिता हरिभक्तिरस्तु ॥

रा०—(हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है)

ब्रा०—महारानी ! गुरुजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है। इसे महारानी पहले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा-सा पान भी कर लें और यह रक्षाबन्धन भेजा है, इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बाँध दें, फिर इस जल से मैं मार्जन करूँगा।

रा०—(नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुँह फेरकर आचमन करके) मालती ! यह रक्षाबन्धन तू सँभाल के अपने पास रख, जब रोहिताश्व मिले उसके दहिने हाथ पर बाँध दीजियेा।

स०—जेा आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)।

ब्रा०—तेा अब आप सावधान हेा जायँ, मैं मार्जन कर लूँ।

रा०—(सावधान होकर) जेा आज्ञा।

ब्रा०—(दूर्वा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
गन्धर्वाः किन्नरा नागा रक्षां कुर्वन्तु ते सदा ॥
पितरेा गुह्यका यक्ष देव्येा भूताश्च मातरः।
सर्व्वे त्वामभिषिञ्चन्तु रक्षां कुर्वन्तु ते सदा ॥
भद्रमस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु।
पतिपुत्र युता साध्वी जीव त्वं शरदांशतम् ॥

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)

यत्पापं रेागमशुभं तद् दूरेप्रतिहतमस्तु।

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मङ्गलं शुभं सौभाग्यं धनधान्यमारेाग्यम्बहु—
पुत्र तत्सर्व्वमीश-प्रसादात् ब्राह्मणवचनात्तथ्यस्तु ॥

(मार्जन करके फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है।)

रा०—(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज ! गुरुजी से मेरी ओर से विनती करके दण्डवत् कह दीजियेगा।

ब्रा०—जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)।

रा०—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आये ?

स०—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले॥
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटाये।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचाये॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ।
अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन चट अलियाँ॥
भये धरम में तिथि सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे।
रिपु-जुवती मुख-कुमुद मन्द, जन चक्रवाक अनुरागे॥
अरघ-सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिन कहँ तोखौ।
न्याय कृपा सेा ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ॥

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा०—महाराज ठाकुरजी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते आते हैं।

स०—आप कहती हैं चले ? वह देखिए आ पहुँचे, कि चले ?

रा०—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती है)

(*परिकर-सहित महाराज हरिश्चन्द्र† आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथास्थान बैठते हैं)

ह०—(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलिन क्यों हो रहा है ?

रा०—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है ?

ह०—प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है, पर तुम तो वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर-माता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ।

रा०—नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है ।

ह०—तो गुरुजी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया !

रा—महाराज ! शान्ति तो गुरुजी ने कर दी है ।

ह०—तब क्या चिन्ता है ? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो, सब कल्याण होगा । सदा सर्वदा सहज मङ्गल-साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिए ।

रा०—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने ग्रन्थों में देखा है ?

---

*राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा, पेज़ामा, कमरबन्द, दुशाला, पगड़ी, सिरपेच सजे । दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेष के, एक निशान-वाला सेवक के वेष में । निशान पर सूर्य्य के नीचे "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" लिखा हुआ । चार शस्त्रधारी अङ्गरक्षक, दो सेवक ।

† सफेद वा केसरी जामा, पैजामा, कमरबन्द, मर्दाना सब गहना सिर पर किरीट वा पगड़ी, सिरपेच तुर्रा, हाथ में तलवार, दुशाला या कोई चमकता रूमाल ओढ़े ।

ह०—(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है। (चिन्तापूर्वक स्मरण करके) हाँ, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्यासाधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उसको बचाने गया हूँ तब वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य माँगा है, मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया है।

(इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता का नाट्य करता है)

रा०—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह०—मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा।

रा०—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा ?

ह०—प्रिये ! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हा ! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो। स्वप्न किसने देखा है ? मैंने न ? फिर क्या ? स्वप्न-संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है ? और जो अब असत्य कहो, तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर उसमें परलोक के हेतु लोग धर्म्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष ?

रा०—(हाथ जोड़कर) नाथ ! क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी !

ह०—(चिन्ता करके) पर मैं अब करूँ क्या ! अच्छा ! प्रधान ! नगर में डौंड़ी पिटवा दो कि राज्य के सब लोग आज इसे अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण का समझें उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उसकी थाती समझ के राजकार्य करेगा और दो मुहर राजकाज के हेतु बनवा लो, एक पर " अज्ञात-नामगोत्र ब्राह्मण महाराज का सेवक हरिश्चन्द्र " और दूसरे पर " राजाधिराज अज्ञात-नाम गोत्र ब्राह्मण महाराज " खुदा रहे और आज से राजकाज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देश के राजाओं और बड़े-बड़े कार्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात नाम-गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है, इससे आज से उसका राज्य हरिश्चन्द्र मन्त्री की भाँति सँभालेगा !

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह०—(घबड़ा कर अभी आदरपूर्वक ले आओ।

द्वा०—जो आज्ञा (जाता है)।

ह०—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र* आते हैं)

ह०—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज ! पधारिए, यह आसन है।

वि०—बैठ चुके, बोल अभी तैंने मुझे पहचाना कि नहीं ?

---

* जटा और डाढ़ी बढ़ाये, खड़ाऊँ पहने, गले में मृगछाल बाँधे, धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश कमण्डलु।

ह०—(घबड़ाकर) महाराज ! पूर्व्वपरिचय तो आप ज्ञात होते हैं।

वि०—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहचानेगा, सच है रे सूर्य्यकुल-कलंक ! तू क्यों पहचानेगा, धिक्कार है तेरे मिथ्या-धर्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट ! तैं भूल गया ; कल पृथ्वी किसको दान दी थी ? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

" जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकधिप्रं
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्।
सर्गान्तरोहरणभीतजगत्कृतान्तं
चाण्डालयाजिनमवैषि न कौशिकं माम् ॥"

ह०—(पैरों पर गिर के बड़े विनय से) महाराज ! भला आपको त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ?

" अन्नत्तयादिषु तथा विहितात्मवृत्तिं
राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसं त्वम्।
आडीबकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसां च निधिं न वेत्ति ॥ "

वि०—(क्रोध से) सच है रे, पाप, पाषंड मिथ्यादानवीर ! तू क्यों न मुझे "राजप्रतिग्रह-पराङ्मुख" कहेगा, क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान दी है, ठहर, ठहर, देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है। हा ! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है (अत्यन्त क्रोध से लम्बी साँस लेकर और बाँह उठाकर) अरे ब्रह्मा !

सँभाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परम तेजपुञ्ज दीर्घ-तपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई। आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह०—(पैरों पर गिरके) महाराज ! क्षमा कीजिए, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था। सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं ! (ईषत् क्रोध से) और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिए, सुनिए, मेरी यह प्रतिज्ञा है !

"चन्द टरे सूरज टरे, टरे जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरे न सत्य विचार॥"

वि०—(क्रोध और अनादरपूर्वक हँसकर) हहहह ! सच है, सच है, रे मूढ़ ! क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

ह०—लीजिए, इसमें विलम्ब क्या है, मैंने तो आपके आगमन से पूर्व्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है (पृथ्वी की ओर देख कर)।

जेहि पाली इक्ष्वाकु सेा, अब लौं रवि-कुल राज।
ताहि देत हरिचन्द नृप, विश्वामित्रहिं आज॥
वसुधे ! तुम बहु सुख कियेा, मम पुरुषन को होय।
धरमबद्ध हरिचन्द को, छमहु सु परबस जेाय॥

वि०—(आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखाले, तो मेरा नाम विश्वामित्र, जो तुझको सत्य-भ्रष्ट करके

छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है। (प्रकट) स्वस्ति अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है ?

ह०—महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि०—भला सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ?

ह०—जो आज्ञा। (मंत्री से) मंत्री ! हज़ार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ।

वि०—(क्रोध से) "मंत्री ! हज़ार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ" मंत्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब ख़ज़ाना तेरा है ? झूठा कहीं का, देना नहीं था तो मुँह से कहा क्यों ? चल, मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

ह०—(हाथ जोड़कर विनय से) महाराज ठीक है। ख़ज़ाना अब सब आपका है, मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ ख़ज़ाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

वि०—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदण्ड गिराऊँगा, देख केवल एक मास की अवधि है।

ह०—महाराज ! मैं ब्रह्मदण्ड से उतना नहीं डरता जितना सत्य-दण्ड से, इससे—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है।)

(जवनिका गिरती है।)

इति दूसरा अङ्क।

तीसरे अंक में अंकावतार

(स्थान वाराणसी का बाहरी प्रान्त, तालाब

(पाप* आता है)

पा०—(इधर-उधर दौड़ता और हाँफता हुआ) मरे रे मरे ! जले रे जले !! कहां जायँ, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है राजा हरिश्चन्द्र काशी गये हैं, क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हमसे उऋण नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराये और सोच-विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज ! हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम काशी चलें, क्योंकि जहां हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहां हमारे प्राण बचेंगे, सो यहां और भी उत्पात हो रहा है। जहां देखो वहां स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख-

---

*काजल सा रंग, लाल नेत्र, महाकुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिये, नीला काछा कछे।

घण्टा की घनघोर ध्वनि के साथ वेद की धुनि, मानो ललकार-ललकार के हमारे शत्रु धर्म्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शिशिशि.....ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय! कहाँ जायँ क्या करें? हमारी तो संसार से मानो जड़ ही काटी जाती है, भला और जग तो कुछ हमारी चलती भी है, पर यहाँ तो मानों हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहाँ आया कि गति भई!

(नेपथ्य में)

सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"

पा०—अरे रे! यह कौन महा भयङ्कर भेष अंग में भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाये, लाल-लाल आँखें निकाले साक्षात् काल की भाँति त्रिशूल घुमाता चला आता है। प्राण! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में। अब इस समय भूमण्डल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव* आते हैं)

भै०—सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः" देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और पुत्र बेचने को यहीं आया है! अहा! धन्य

---

*महादेव जी का सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग, एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला।

है सत्य ! आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गये और रोमाञ्च होने से सब शरीर के भस्मकण अलग-अलग हो गये । मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना ; इससे चलूँ, मैं भी भेस बदलकर भगवान् की आज्ञा-पालन में प्रवृत्त होऊँ ।

(जाते हैं, जवनिका गिरती है)

तीसरे अङ्क में यह अङ्कावतार समाप्त हुआ ।

तीसरा अंक

(स्थान काशी के घाट-किनारे की सड़क)

(महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं)

ह०—देखो, काशी में पहुँच गये। अहा! धन्य है काशी! भगवति वाराणसि! तुम्हें अनेक प्रणाम है। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है!

"चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि कञ्चन धाम आकास विभासिका। सोभा नहीं कहि जाय कछू बिधिनै रची मानो पुरीन की नासिका। आपु बसैं गिरिधारन जू तट, देवनदी बर बारि बिलासिका। पुन्य-प्रकासिका पाप-बिनासिका हीयहुलासिका सोहत कासिका॥ १॥

"बसैं बिंदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही ते लागै जममुख मसी है। तीरथ अनादि पञ्चगंगा मनिकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्यरूप धसी है। गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तोरै आसु कर्म्मरूप रसी है। ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानसी है॥ २॥

"रचित प्रभा सी भासी अवलि मकानन की जिनके अकासी फबै रतन-नकासी है। फिरैं दास दासी विप्र गृही और संन्यासी लसैं बर गुनरासी देवपुरीहू न जासी है। गिरिधरदास विस्व कीरति विलासी रमाहासी लौं उजासी जाकी लगत हुलासी है। खासी परकासी पुनवांसी चन्द्रिका सी जाके बासी अविनासी अवनासी ऐसी कासी है॥ ३॥

देखा! जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अँगूठी के नगीने सा नगर

बनाया है वैसी ही नदी भी इसके लिए दी है। धन्य गंगे! "जन की सब त्रास विनास करी मुख ते निज नाम उचारन में। सब पाप प्रतापहिं दूर दरयो तुम आप अपान निहारन में। अहो गंग अनंग के शत्रु करे बहु, नेकु बलै मुख डारन में। गिरिधारन जू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में॥ ४॥"

कुछ महातम ही पर नहीं, गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है! अहा!

नव उज्जल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरिपद-नख-चन्द्रकान्त-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल मंडन, भव खंडन सुर-सरवस॥
शिव-सिर मालतिमाल, भगीरथ नृपति पुन्यफल।
ऐरावत गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल॥
सागर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगिनित धारा रूप धारि सागर सञ्चारण॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेट्यो जग धाई।
सपनेहुँ नहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहुँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥

---

*ये चारों कविता ग्रन्थकर्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र की बनाई जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास या गिरिधारन रखते थे।

धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरी नहात बारि कर-जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्तगुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलङ्क मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दरि सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

(कुछ सोच कर) पर हा! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है।

"अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः।
मगधेन समा काशी गंगाप्यंगारवाहिनी॥*"

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है। हा! कैसे कष्ट की बात है, राज-पाट, धन-धाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहाँ से देंगे। क्या करें! हम सत्य-धर्म कभी छोड़ेंगे ही नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाये बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते। क्या करें? कुबेर को जीत कर धन लावें? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है; तो क्या किसी

*जिनका भोजन वस्त्र और निवास ठीक-ठीक नहीं है, उनको काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली है।

से माँग कर दें ? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे, फिर ऋण काढ़ें ? पर देंगे कहाँ से ? हा ! देखो, काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं पर हमको यहाँ भी हाय-हाय मची है। हा ! पृथ्वी ! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलङ्कित मुँह फिर किसी को न दिखाऊँ ! (आतंक से) पर यह क्या ? सूर्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे ये कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिये बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोचकर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें ? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिन्ता करके एक साथ हर्ष से) वाह ! अभी तो स्त्री, पुत्र और हम तीन मनुष्य तैयार हैं ! क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्णमुद्रा भी न मिलेंगी ? तब फिर किस बात का इतना सोच ? न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहाँ सोई थी ; हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था—

बेचि देह दारा सुअन, होय दासहू मन्द।
रखि है निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द ॥

(नेपथ्य में)

तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ?

अरे मुनि तो आ पहुँचे। क्या हुआ, आज उनसे एक-दो दिन की अवधि और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं)

वि०—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण सब बहक गई। कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है, पर क्या करें, इसके सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्यभ्रष्ट हो

चुका, पर जब इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूँगा तब तक मुझे सन्तोष न होगा। (आगे देखकर) अरे! यही दुरात्मा (कुछ रुककर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र हैं? (प्रकट) क्यों रे! आज महीने में कै दिन बाकी हैं? बोल, कब दक्षिणा देगा?

ह०—(घबड़ाकर) अहा! महात्मा कौशिक भगवन्! प्रणाम करता हूँ (दण्डवत करता है)।

वि०—हुई प्रणाम, बोल तैंने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया? आज महीना पूरा हुआ, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूँगा। दे अभी, नहीं तो—(शाप के वास्ते कमण्डलु से जल हाथ में लेते हैं)

ह०—(पैरों पर गिरकर) भगवन्! क्षमा कीजिए। यदि आज सूर्यास्त के पहिले मैं न दूँ तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूँ।

वि०—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रकट) अच्छा, आज साँझ तक और सही। साँझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूँगा, वरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूँगा कि हरिश्चन्द्र का सत्य भ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

ह०—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चले अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल-लाल आँखें नहीं देखी है। (आगे चलकर) अरे! क्या बाज़ार में आगये,

अच्छा, (सिर पर तृण रखकर) * आरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारों, हम किसी कारण से अपने को हज़ार मोहर पर बेचते हैं, किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) देखो कोई दिन यह था कि इसी मनुष्य-विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरे को दण्ड देते थे पर आज यही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है! (अरे! सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है। ऊपर देख कर) क्या कहा? "क्यों, तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो?" आर्य्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे; समझते सब कुछ हैं, पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता, और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? "कुछ दाम कम करो।" आर्य्य, हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहाँ से जानें। जो कुछ ठीक था कह दिया।

(नेपथ्य से)

आर्य्यपुत्र! ऐसे समय में हमको छोड़ जाते हो। तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रह के क्या करूँगी? स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इससे पहले बायाँ अंग बेच लो तब दहिना अंग बेचो।

---

* उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तब सिर पर तृण रखता था।

ह०—(सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी ?

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै०—कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बा०—अम को बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ।

शै०—(आँखों में आँसू भर कर) पुत्र ! चन्द्र-कुल-भूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्य्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर वचन कहता है। मैं अभी जीती हूँ ! (रोती है)

बा०—माँ का अञ्चल पकड़ के) माँ ! तुमको कोई मोल लेगा तो हमको बी मोल लेगा। आँ, आँ, माँ लोती काए को ओ (कुछ रोना सा मुँह बना के शैव्या का आँचल पकड़ के झूलने लगता है)।

शै०—(आँसू पोंछ कर) मेरे भाग्य से पूछ।

ह०—अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था ? हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई, हम उनको कुछ धीरज भी न दे आये। उनकी अब कौन गति होगी। हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो अब यह देखना पड़ा। हृदय ! तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री को बिकना देख कर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? (बारम्बार लम्बी साँस लेकर आँसू बहाता है)।

शै०—(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देख कर) क्या कहा ? "क्या-क्या करोगी ?" पर-पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और सब सेवा

करूँगी। (ऊपर देख कर) क्या कहा? "इतने मोल पर कौन लेगा?" आर्य्य! कोई साधु-ब्राह्मण-महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ०—क्यों रे कौण्डिन्य! सच ही दासी बिकती है?

ब०—हाँ, गुरुजी! क्या मैं झूठ कहूँगा? आप ही देख लीजिएगा।

उ०—तो चल, आगे-आगे भीड़ हटाता चल, देख, धारा-प्रवाह की भाँति कैसे सब काम-काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने को जगह नहीं है और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

ब०—(आगे आगे चलता हुआ) हटो, भाई, हटो (कुछ आगे बढ़कर) गुरु जी! यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी।

उ०—(शैव्या को देखकर) अरे, यही दासी बिकती है?

शै०—(अरे कोई हमको मोल ले इत्यादि कहती और रोती है)

बा०—(माता की भाँति तोतली बोली से कहता है।)

उ०—पुत्री! कहो तुम कौन सेवा करोगी?

शै०—पर-पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और जो-जो कहियेगा सब करूँगी।

उ०—वाह! ठीक है। अच्छा, लो यह सुवर्ण। हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के काम काज नहीं कर सकती सो तुम सँभालना।

शै०—(हाथ फैलाकर) महाराज! आपने बड़ा उपकार किया।

उ०—(शैव्या को भली भाँती देखकर आप ही आप!) अहा! यह निसन्देह किसी बड़े कुल की है। इसका मुख सहज लज्जा से ऊँचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर

ही पर है। जो बोलती है वह धीरे-धीरे और बहुत सँभाल के बोलती है। हा! इसकी यह गति क्यों हुई! (प्रकट) पुत्री! तुम्हारे पति हैं?

शै०—(राजा की ओर देखती है)

ह०—(आप ही आप दुःख से) अब नहीं हैं। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो!

उ०—(राजा को देख कर आश्चर्य से) अरे यह विशाल-नेत्र, प्रशस्त-वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लम्बी-लम्बी भुजा वाला कौन मनुष्य है और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रक्खा है? (प्रकट) महात्मा तुम हमको अपने दुख का भागी समझो और कृपापूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो।

ह०—भगवान् और तो विदित करने का अवसर नहीं है, इतना ही कहता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उ०—तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋण-मुक्त हूजिए!

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) राम राम! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी!

उ०—तो पाँच सौ मोहर पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै०—(राजा से हाथ जोड़ कर) नाथ! हमारे आग्रह आप मत बिकिये, जिसमें हमको अपनी आँख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी बिनती मानिये। (रोती है)

ह०—(आँसू रोक कर) अच्छा! तुम्हीं जाओ। (आप ही आप) हा! वज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है अब भी नहीं विदीर्ण होता!

शै०—(राजा के कपड़े में सोना बाँधती हुई) नाथ ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य्य ! आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्यपुत्र का भली भाँति दर्शन कर लूँ। फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ !

उ०—हाँ ! हाँ, मैं जाता हूँ, कौण्डिन्य यहाँ है, तुम उसके साथ आना। (जाता है)

शै०—(रोकर) नाथ ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।

ह०—(अत्यन्त घबड़ाकर) अरे, अरे विधाता ! तुझे यही करना था (आप ही आप) हा ! पहले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान् सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। (रोता हुआ, प्रकट रानी से) प्रिये ! सर्व भाव से उपाध्याय को प्रसन्न करना और सेवा करना।

शै०—(रोकर) नाथ ! जो आज्ञा।

बटु०—उपाध्याय जी गये, अब चलो जल्दी करो।

ह०—(आँखों में आँसू भर के) देवी ! (फिर रुककर अत्यन्त सोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूँ, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी ! उपाध्याय की आराधना भली भाँति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृद भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीति-पूर्वक सेवा करना, बालक का यथासम्भव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें। जो जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना (आँसू बहाते हैं।)

शै०—जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिरके रोती है)।

ह०—(धैर्यपूर्वक) प्रिये ! देर मत करो, बटुक घबड़ा रहे हैं।

शै०—(उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे-धीरे चलती है।)

बा०—(राजा से) मा कआँ जाती ऐं !

ह०—(धैर्य से आंसू रोककर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा०—(बटुक से) अले मा को मत लेजा। (मा का आंचल पकड़ के खींचता है)

बटु०—(बालक को ढकेल कर) चल; चल देर होती है।

बा०—(ढकेलने से गिरकर रोता हुआ, उठ कर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता-पिता की ओर देखता है।)

ह०—ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना। (बालक को उठाकर धूर पोछ के मुँह चूमता हुआ) पुत्र ! मुझ चाण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ, माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये ! धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ, देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह०—धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवा और कठोर हृदय किसका होगा ? संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह०—(पैर पर गिरके प्रणाम करता है।)

वि०—ला, दे दक्षिणा ! अब साँझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह०—(हाथ जोड़कर) महाराज, आधी लीजिए, आधी अभी देता हूँ (सोना देता)।

वि०—हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें, दे, चाहे जहाँ से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिग् व्रतमिदं धिग् ज्ञानं धिग् बहुश्रुतम्।
नीतवानसि यद् ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम्॥

वि०—(बड़े क्रोध से) आः हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देखकर) अरे विश्वेदेवा ! (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्ष पातियो ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ*। (जल छोड़ते हैं) (नेपथ्य में, हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)। (सुनकर और ऊपर देखकर आनन्द से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो, किरीट कुण्डल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूटकर विश्वेदेवा उल्टे ही होकर नीचे गिरते हैं ; और हमको धिक्कार दें।

ह०—(ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप के प्रभाव ! (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यह बड़ा अनुग्रह है ! (प्रकट) भगवन् ! यह स्त्री बेचकर आधा धन पाया है सो और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं।

---

* यही पाँचों विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए जिन्हें अश्वत्थामा ने बालपन ही में मार डाला।

(नेपथ्य में)

अरे, अब तो नहीं सही जाती ।

वि०—हम आधा न लेंगे, चाहे जहाँ से अभी सब दे ।

ह०—अरे सुनो भाई, सेठ-साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चाण्डाल के वेष में धर्म और सत्य आते हैं*)

धर्म—(आप ही आप) ।

हम प्रत्यक्ष हरि रूप जगत हमरे बल चलत ।
जल-थल-नभ थिर मेा प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी ।
इक हम ही सँग जात, तजत जब पितु सुत नारी ॥
सेा हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियेा ।
सेा सत्य परिच्छन नृपति केा आज भेस हम यह कियेा ॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है ।

(आगे बढ़कर, प्रकट) अरे ! हरजनवा ! मोहर का सन्दूक ले आवा है न !

सत्य—का चौधरी ! मोहर लेके का करबो ?

धर्म—तोहसे का काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह०—(अरे सुनो, भाई, सेठ-साहूकार इत्यादि दो तीन वेर पुकार के इधर उधर घूम कर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हमसे रुष्ट होकर

---

* कांत कण्ठ, काला रंग, लाल नेत्र, सिर पर छोटे-छोटे घुँघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ ।

शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है)।

धर्म—(आप ही आप) हाय ! हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो चलें आगे। (आगे बढ़ कर) अरे ! अरे ! हम तुमको मोल लेंगे, लेव यह पाँच सै मोहर लेव।

ह०—(आनन्द से आगे बढ़ कर) वाह कृपानिधान ! बड़े अवसर पर आये। लाइए (उसको पहचान कर) आप मोल लेंगे ?

धर्म—हाँ हम मोल लेंगे। (सोना देना चाहता है)

ह०—आप कौन हैं ?

धर्म—हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार॥
सब मसान पर हमरा राज। कफन माँगने का है काज॥
फूलमती देवी* के दास। पूजें सती मसान निवास॥
धनतेरस औ रात दिवाली। बल चढ़ाय के पूजें काली॥
सेा हम तुम को लेंगे मोल। देंगे मुहर गाँठ से खोल॥

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

ह०—(बड़े दुःख से) अहह ! दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है। (विश्वामित्र से) भगवन् ! मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आप का दास होकर रहूँगा, मुझे चाण्डाल होने से बचाइए।

वि०—छिः मूर्ख ! भला हम दास लेके क्या करेंगे ? "स्वयं दासास्तपस्विनः"।

ह०—(हाथ जेाड़ कर) जेा आज्ञा कीजिएगा हम सब करेंगे।

---

* प्राचीन काल में चाण्डालों की कुलदेवी चण्डकात्यायनी थीं, परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी हैं।

वि०—सब करेगा न? (ऊपर हाथ उठा कर) धर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूँगा।

ह०—हाँ, हाँ, जो आप आज्ञा कीजिएगा सब करूँगा।

वि०—तो इसी गाहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

ह०—जो आज्ञा (आप ही आप) अब कौन सोच है। (प्रकट, धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे!

धर्म—वह कौन?

ह०—भोख असन, कम्बल बसन, रखि हैं दूर निवास।
जो प्रभु आज्ञा होइ है, करि हैं सब ह्वै दास॥

धर्म—ठीक है, लेव सोना। (दूर से राजा के आँचल में मोहर देता है)

ह०—(लेकर हर्ष से, आप ही आप)
ऋन छूट्यो पूस्यो वचन, द्विजहु न दीनों साप।
सत्य पालि चाण्डालहू, होइ आजु मोहि दाप॥

(प्रकट, विश्वामित्र से) भगवान्! लीजिए यह मोहर।

वि०—(मुँह चिढ़ाकर) सचमुच देता है?

ह०—हाँ, हाँ, लीजिए! (मोहर देते हैं)

वि०—(लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो, बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवान्! दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न?

वि०—हाँ, क्षमा हुआ अब हम जाते हैं।

ह०—भगवान्! प्रणाम करता हूँ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह०—अब चौधरी जी (लज्जा से रुक कर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।

धर्म—(मत्त की भाँति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिनी मसान। लेव वहाँ कफ़न का दान॥
जो कर तुमको नहीं चुकावे। सो किरिया करने नहिं पावे॥
चलो घाट पर करो निवास। भये आज से हमरे दास॥

ह०—जो आज्ञा।

(जवनिका गिरती है)

इति तीसरा अङ्क

चौथा अङ्क

(स्थान-दक्षिण श्मशान, नदी, पीपल का पेड़, चिता,
मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि)

(कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिये हुए
राजा हरिश्चन्द्र दिखाई पड़ते हैं)

ह०—(लम्बी साँस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चण्डाल की, घर घनघेर मसान ।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान ॥

न जाने ! विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका, तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या सोचें ? अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चण्डालपने को । हा ! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोध-भरी और रानी ने जाते समय करुणा-भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती । (घबड़ाकर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गईं और दासी बनीं ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूँथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माँजोगी ? (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सँभलकर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा ।

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी? किसी पुण्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायँ (लट्ठ कन्धे पर रख कर फिरता हुआ) ख़बरदार! ख़बरदार!! बिना हमसे कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर-उधर देखता फिरता है)। (नेपथ्य में, कोलाहल सुनकर) हाय हाय! कैसा भयंकर श्मशान है! दूर से मण्डल बाँध-बाँधकर चोंच बाये, डैना फैलाये, कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोच-नोचकर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भाँति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। इधर चिर्राइन फैलती हुई चट-चट करती चिताएँ कैसी जल रही हैं जिनमें कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला-पीला हो रहा है, ज्वाला घूम घूम कर निकलती है, आग कभी एक साथ धधक उठती है, कभी मन्द हो जाती है। धुआँ चारों ओर छा रहा है। (आगे देखकर, आदर से) अहा! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो; अतएव कहा है—

"मरनो भलो विदेश को, जहाँ न अपनो कोय।
माटी खायँ जनावरा, महामहोच्छय होय॥"

अहा! देखो।

सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनंद उर धारत॥

गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि के खान विचारत॥

बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ्यो सब को हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आज भिखारिन कहँ दियो॥

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद, दोय।
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय॥
हाड़ मांस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुर्गन्ध मय, मरे मनुस के होय॥
कादर जेहि लखि कै डरत, पण्डित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को, विषय बासना साज॥

अहा! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई सुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यौ॥
सोई भुज से प्रिय गर डारें।
सोई भुज जिन नर विक्रम पारें॥
सोई पद जिहि सेवक बन्दत।
सोई छवि जेहि देखि अनन्दत॥
सोई रसना जहँ अमृत बानी।
जेहि सुनि के हिय नारि जुड़ानी॥
सोई हृदय जहँ भाव अनेका।
सोई सिर जहँ निज बच टेका॥
सोई छवि-मय अंग सुहाये।
आज जीव बिनु धरनि सुहाये॥
कहाँ गई वह सुन्दर सोभा।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा॥

प्रानहु ते बढ़ि जा कहँ चाहत।
ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत॥
फूल बोझहु जिन न सहारे।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे॥
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी।
करत कपालक्रिया तिन केरी॥
छिनहूँ जे न भये कहुँ न्यारे।
तेउ बन्धुगन छोड़ि सिधारे॥
जो दृग कोर महीप निहारत।
आजु काक तेहि भोज बिचारत॥
भुजबल जे नहिं भुवन समाये।
ते लखियत मुख कफन छिपाये॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे।
गने काल सब एकहि लेखे॥
सुभग कुरूप अमृत बिष साने।
आजु सबै इक भाव बिकाने॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं।
रहे नाम ही ग्रन्थन माहीं॥

अहा! देखो वही सिर, जिस पर मन्त्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था, कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े-बड़े राजा जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देखकर) अरे यह श्मशानदेवी हैं। अहा! कात्यायनी को भी कैसा वीभत्स उपचार प्यारा है? यह देखो डोम लोगों ने सूखे, गले-सड़े फूलों की माला गङ्गा में से पकड़-पकड़ कर देवी को पहना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसो के गले के घण्टे पीपल की

डार में लटक रहे हैं, जिनमें लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घण्टे के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खम्भे में लहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर)

* "भगवति ! चण्डि ! प्रेते ! प्रेतविमाने ! लसत्प्रेते। प्रेतास्थि रौद्ररूपे ! प्रेताशिनी ! भैरवि ! नमस्ते"।

(नेपथ्य में) राजन् ! हम केवल चाण्डालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। माँगो, क्या वर माँगते हो ?

ह०—(सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए।

(नेपथ्य में) साधु महाराज ! हरिश्चन्द्र साधु !

ह०—(ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनी-वल्लभ और लौकिक-वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दोपहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया, जो गगनाङ्गन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गँवा कर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा—

साँझ सेई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है।
पच्छिम के बहु शब्दन के मिस जीअ उचाटन मन्त्र कह्यो है॥
मद्य भरी नर खोपरी सेा ससि को नव बिम्बहु धाइ गह्यो है।
दै बलि जीव पसु वह मत्त ह्वै काल कपालिक नाच रह्यो है॥

* इनमें प्रायः सब श्लोक आर्य्यक्षेमीश्वर के बनाये चण्डकौशिक से उद्धृत किये गये हैं।

सूरज धूम बिना की चिता सोई अन्त में ले जल माहिं बहाई।
बोलें घने तरु बैठि बिहङ्गम रोवत सेा मनु लेाग लुगाई।
धूम अन्धार कपाल निसाकर, हाड़ नक्षत्र लहू सी* ललाई।
आनन्द हेतु निशाचर के यह काल समान सेा साँझ बनाई॥

अहा! यह चारों ओर से पक्षी सब कैसा शब्द करते हुए अपने-अपने घोंसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, साँझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक सङ्ग अमङ्गल शब्द से काँव-काँव करना और रात के आगमन से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही आता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मण्डूकों का टर-टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलू कहुँ रटत पुकारी॥
अन्धकारबस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध-गरुण-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव॥
रोवत सियार, गरजत नदी, स्वान भूँकि डरपावई।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई॥

इस समय यह चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती है। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ-पैर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे शरीर! तेरी क्या-क्या गति होती है!!!

---

* प्राचीन काल राजा के अपराधी लोग श्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे। इसीसे यहाँ श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है, क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ाकर दुर्गन्धमय करना बहुत ही बुरी है। न कुछ शेष रहेगा, न दुर्गति होगी। हा! चलो आगे चलें। (ख़बरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते और गाते-बजाते हुए आते हैं)

पि० और डा०—हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
हम सेवें मसान शिव को भजें बोलैं बम बम बम।

पि०—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे॥
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे॥

डा०—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगी।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगी॥

सब—हम नाचें मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम्।
हैं भूत०—

पि०—हम काट काट कर शिर को गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालेंगे॥

डा०—हम मांग में लाल लाल लोहू का सेंदुर लगावेंगी।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावेंगी॥

सब—हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकें चम चम चम।

पि०—लोहू का मुँह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ेंगे॥

डा०—हम लाद औंधे मुरदे चौकी बनावेंगी।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी॥

सब—हम सुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम।

(वैसे ही कूदते हुए एक ओर से चले जाते हैं)

ह०—(कौतुक से देख कर) पिशाचों का क्रीड़ा-कुतूहल भी देखने के योग्य है। अहा ! यह कैसे काले-काले झाड़ू से सिर के बाल खड़े किये लम्बे-हाथ पैर, विकराल दांत, लम्बी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छन्द विहार कर रही है। हाय हाय ! इनका खेल और सहज व्यौहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लहू भर-भर कर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अँतड़ी निकाल गले में डाले है और चन्दन की भाँति चरबी और लहू शरीर में पोत रहा है, कोई दूसरे से माँस छीनकर ले भागता है, एक जलता माँस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है, पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू-थू करके थूक देता है और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा ! देखो, यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है, जिसे देखने को चारों ओर से सब भूत एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है ! हँसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अङ्गों से लड़ते हैं और उनको ले-लेकर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़ पकड़कर खा जाते हैं। अहा ! भगवान् भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग-साधन किया है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है)। (ऊपर देखकर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अँधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता !

चाण्डाल कुल की भाँति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है ! (स्मरण करके) हा ! इस दुःख की दशा में भी हममे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो, पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच—

"टूट टाट घर टपकत खटिया टूट।
प्रिय के बाँह उसिसवाँ सुख के लूट॥"

विधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा ! यह वर्षा और यह दुःख ! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिसने सपने में भी दुःख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होंगी। हा देवि ! धीरज धरो, धीरज धरो। तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देखकर) पानी बरसने लगा। अरे ! (घोघी भली भाँति ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहूँधा सों लगाई चित्त चिनगी चिलक पटघीजना चलायो है। हेती घनमाल स्याम बादर सू भूमि कारी वीरबधू लहू बूँद मुख लपटायो॥ हरीचन्द्र नीर धार आँसू सी परत जहाँ दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है। दाहन वियोग दुखियान को मरेहूँ यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है ? (ख़बरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इन्द्र काजहूँ सरिस जो, आयसु लाँघै कोय।
यह प्रचण्ड भुजदण्ड मम, प्रतिभट ताको होय॥

अरे ! कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है ?

(नेपथ्य में) हम हैं !

ह०—अरे ! हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है ? चलें, जहाँ से आवाज़ आई है वहाँ चल कर देखें। (आगे बढ़ कर, नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अङ्ग लगाये। अस्थि अभूसन विविध बनाये॥
हाथ मसान कपाल जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है *)

धर्म—अरे, हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्मरति, करि जग के सुख त्याग।
फिरहि मसान मसान हम, धारि अनन्द विराग॥

(आगे बढ़कर, महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत।
जल-थल-नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
हमहीं इक सँग जात तजत जब पितु-सुत नारी॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेस हम यह कियो॥

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःखपरम्परा अत्यन्त शोचनीय और इसके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहज विविध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाड़हीं, जे जग साँचे लोग॥

* गेरुए वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफ़नी पहने सिर से बाल खोले, सेंदुर का अर्द्ध चन्द्र किये नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आँखें लाल, फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहने।

बरु सूरज पच्छिम उगे, बिन्ध्य तरै जल माहिं।
सत्य-धीर जन पै कबहुँ, निज बच टारत नाहिं॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख सुख को सुख गिनते ही नहीं, चलें उनके पास चलें। (आगे बढ़कर और देखकर) अरे! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं?

(प्रकट) महाराज, कल्याण हो!

ह०—(प्रणाम करके) आइए योगिराज!

ध०—महाराज, हम अर्थी हैं।

ह०—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध०—महाराज! आप लज्जा मत कीजिये। हम लोग योग-बल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने के लिये बहुत हैं। चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवाकर भिक्षुकों का कल्याण करता है।

ह०—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

ध०—अंजन गुटिका पादुका, धातु भेद बैताल।
वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्धि यहि काल*।

ह०—तो मुझे जो आज्ञा हो करूँ।

---

* अंजनसिद्धि से ज़मीन में गड़े ख़ज़ाने देख पड़ते हैं। गुटिका मुँह में रखकर वा पादुका पहन कर चाहे जहाँ अलक्ष्य चला जाय। धातुभेद से औषधमात्र सिद्ध होती हैं। बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है। वज्र सिद्ध होने से जहाँ गिराओ वहाँ गिरता हैं। रसायन सिद्ध होने से चाँदी-सोना बनता है। जोगिनी सिद्ध होने से भूत-भविष्यत का बृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है। ये ही आठों सिद्धियाँ हैं।

ध०—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गये हैं, पर विघ्न इसमें बाधक होते हैं, सो विघ्नों का निवारण कर दीजिये।

ह०—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूँ इससे जिसमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूँ।

ध०—(आप ही आप) राजन्! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी। (प्रत्यक्ष) महाराज! इसमें धर्म न जायगा, क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लङ्घन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर इसी श्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिये।

(जाता है)

ह०—(ललकार कर) हटो, रे हटा विघ्ना! चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हमने रोक दिया।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज! जो आज्ञा। आप से सत्य-वीर की आज्ञा कौन लाँघ सकता।

खुल्यो द्वार कल्याण को, सिद्ध जोग तप आज।
निधि-सिधि-विद्या सब करहिं, अपने मन को काज॥

ह०—(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया। (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती हैं)*

* ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेष में, पर स्त्री का शृङ्गार। खेलने में चित्र पट के द्वारा परदे के ऊपर इनको दिखलावेंगे और इनकी ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा।

म० वि०—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है। हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था, तब देवताओं ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण बचाया है।

ह०—(आप ही आप) अरे ये ही सृष्टि को उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली महाविद्या हैं, जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रकट हाथ जोड़ कर) त्रिलोक-विजयनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

म० वि०—महाराज ! हम लोग तो आपके बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिये।

ह०—देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी हो, उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म० वि०—धन्य महाराज ! धन्य, जो आज्ञा।

(जाती हैं)

(धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाये हुए आता है)

ध०—महाराज कल्याण हो, आप की कृपा से महानिधान* सिद्ध हुआ। आपको बधाई है। अब लीजिए इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सों, अमरदेव सम होइ।
जोगीजन विहरहिं सदा, मेरु शिखर भय खोइ॥

ह०—(प्रणाम करके) महाराज ! दासधर्म के यह विरुद्ध है।

---

* महानिधान बुभुक्षित धातुभेदी पारा, जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं।

इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध०—(आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रकट) तो इससे स्वर्ण बनाकर आप अपना दास्य छुड़ा लें

ह०—यह ठीक है, पर मैंने तो विनती की न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना स्वत्व-मात्र बेच चुका, इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी हो को यह रसेन्द्र दीजिए।

ध०—(आश्चर्य से, आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या—

चलै मेरु धरु प्रलय जल, पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुँ, चलहिं नहीं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ, जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

बै०—जो राचलजी की आज्ञा ! (जाता है)

ध०—महाराज ! ब्राह्ममुहूर्त्त निकट आया, अब हमको भी आज्ञा हो।

ह०—योगिराज ! हमको भूल न जाइयेगा, कभी-कभी स्मरण कीजिएगा।

ध०—महाराज ! बड़े-बड़े देवता आपका स्मरण करते हैं और करेंगे ? मैं क्या कहूँ।

(जाता है)

ह०—क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं

आया। रात के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला, भगवान् नित्य ही ऐसा करे।

(नेपथ्य में, घण्टा नूपुरादि का शब्द सुन कर)
(विमान पर अष्ट महासिद्ध, नवनिधि और बारहों प्रयोग आदि देवता* आते हैं)

ह०—(आश्चर्य से) अरे ये कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं !

दे०—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आपके अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतन्त्र हो गये ; अब हम आपके वश में हैं, जो आज्ञा करें। हम लोग अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारह प्रयोग सब आपके हाथ में हैं।

ह०—(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे०—(आश्चर्य से) धन्य ! राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमी लोगों की सिद्धि को बड़े बड़े योगी-मुनि पच

* साधारण देवी-देवताओं के वेष में। अष्ट महासिद्धि, यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व, और वशित्व। नवनिधि, यथा—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, और, वर्च्चस्। बारह प्रयोग यथा—मरण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन ये छः बुरे और स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, वन्दीमोचन, कामपूरण और वाक्प्रसारण ये छः अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखलाये जायँगे।

मरते हैं, पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत् का कल्याण किया।

ह०—आप लोग मेरे सिर-आँखों पर हैं, पर मैं क्या करूँ क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि यद्यः अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यःसिद्धि होय पर बुरे प्रयोग की सिद्धि विलम्ब से हो।

दे०—महाराज! जो आज्ञा! हम लोग जाते हैं। आज आपके सत्य ने शिवजी के कीलन* को भी शिथिल कर दिया महाराज का कल्याण हो। (जाते हैं)

(नेपथ्य में, इस भाँति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें (दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख! जिसको अष्ट सिद्धि, नव निधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी?

(एक स्वर से) हाँ; तक्षक को आज्ञा दें।

अब और कोई उपाय नहीं है!

ह०—अहा! अरुण उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया (साँस लेकर)

"घा चकई को भयो चित चेतो चितेाति चहूँ दिसि चाय सेां नाची। है गई छीन कलाधर की कला जामिनी जेाति मनेां जम जाँची॥ बोलत बैरी बिहंगम देख सँयेागिन की भई सम्पति काँची। लोहू पियेा जेा वियेागिन को सेा कियेा मुख लाल पिशाचिनी प्राची॥"

---

* शिवजी ने साधनमात्र को कील दिया है जिसमें जल्दी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इसमें वह कीलन भी शिवजी के इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था, क्योंकि यह भी तो एक सब में बड़ा विघ्न था।

हा ! प्रिये इन बरसातों की रात को तुम रो-रो के बिताती होगी ! हाय ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये ?

जेहि सहसन परिचारिका, राखत हाथहिं हाथ।
सो तुम लोटत धूर में, दास बालकन साथ॥
जाकी आयसु जग-नृपति, सुनतहिं धारत सीस।
तेहि द्विज-बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस॥
बिनु तन बेचे बिनु दिये, बिनु जग ज्ञान विवेक।
दैव सर्प दंशित भये, भोगत कष्ट अनेक॥

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया ? देवता उसकी रक्षा करें। (बाईं आँख का फड़कना दिखा कर) इसी समय में यह महा अपशगुन क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखा कर) अरे और साथ ही यह मङ्गल शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है ! वा अब क्या होनहार है ? जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरणमात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहले ही शरीर छूटे, क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है, पर वश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र ! सावधान। यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह०—(घबड़ा कर ऊपर देख कर) अरे, यह कौन है ? कुलगुरु भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं (ऊपर) पिता मैं सावधान हूँ, सब दुखों को फूल की माला की भाँति ग्रहण करूँगा।

(नेपथ्य में, रोने की आवाज़ सुन पड़ती है)

ह०—अरे अब सबेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चाण्डाल-कुल का सदा कल्याण हो, हमें इससे क्या ? (ख़बरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई। हाय बेटा ! हमें रोती छोड़ के कहाँ गये ! हाय रे !

ह०—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इसको पुत्र का है। हाय हाय ! हमको भी भाग्य ने क्या ही निर्दयी और घोरतम कर्म सौंपा है ! इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शै०—(रोती हुई) हाय बेटा ? जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय ! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा ! हाय ! हाय रे ! अब हमारी कौन गति होगी ? (रोती है)

ह०—हाय हाय ! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है ? हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शै०—(रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसने लूट लिया ! यह मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई ! हाय, अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी ! हाय मेरी

अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला ! और बेटा तैं तो मरे पर भी सुन्दर लगता है ! हाय रे अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल। देख, माँ कब की पुकार रही है। बच्चा ! तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़कर गले से लपट जाता था, क्यों नहीं बोलता ? (शव को बार-बार गले लगाती ; देखती और चूमती है)

ह०—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता है।

शै०—(पागल की भाँति) अरे, यह क्या हो रहा है ? बेटा, कहाँ गये हो ? आओ जल्दी। अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है, यहाँ मुझको कौन ले आया है ? रे बेटा ! जल्दी आओ ! अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फूल लेने गया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया ? हाय ! हाय रे !! अरे कहाँ काट लिया ; अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को। अरे वह साँप कहाँ गया, हमको क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमें काट। हाय ! हमको नहीं काटता। अरे यहाँ तो कोई साँप वाँप नहीं है। मेरे लाल, झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय ! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा, गुरु जी पुकार रहे हैं, उनके होम की बेला निकली जाती है। देखो, बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं तो जल्दी उनको दूब और बेलपत्र। हाय ! हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते ! (जोर से) बेटा, साँझ भई, अब विद्यार्थी लोग घर फिर आये ; तुम अब तक क्यों नहीं आये ? (आगे

शव देख कर) हाय-हाय रे ! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डस लिया ! हाय लाल ! हाय रे ! मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया ! हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया ! बेटा ! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किसने आग लगा दी ! हाय मेरा कलेजा किसने निकाल लिया ! (चिल्ला चिल्लाकर रोती है) हाय लाल कहाँ गये ? अरे ! अब मैं किसका मुँह देख के जिऊँगी रे ? हाय अब मा कहके मुझको कौन पुकारेगा अरे आज किस वैरी की छाती ठण्ढी भई रे ? अरे, तेरे सुकुमार अङ्गों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा ! आँख खोलो। हाय ! मैं सब विपत तुम्हारा ही मुँह देखकर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूँगी। अरे लाल ! एक बेर तो बोलो ! (रोती है)

ह०—न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै०—(रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाये बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते ? हाय ! अरे तुमने तो उसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना सो हमने इसकी यह दशा कर दी। हाय ! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते ? भला एक बार लड़के का मुँह तो देख जाओ ! मैं अब किसके भरोसे जीऊँगी ?

ह०—हाय हाय ! इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहाँ से हट चलें (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है)।

शै०—(रोती हुई) हाय ! यह विपत का समुद्र कहाँ से उमड़

पड़ा ! अरे छलिया मुझे छल कर कहाँ भाग गया ! (देखकर) अरे आयुष की रेखा तो इतनी लम्बी है अभी से वह वज्र कहाँ से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुँह, बड़ी-बड़ी आँख, लम्बी-लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय, मरने के तुझमें कौन लच्छन थे जो भगवान् ने तुझे मार डाला ! हाय हाय ! अरे बड़े-जोतषी-गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा सो सब झूठ निकला ! हाय ! पोथी-पत्रा पूजा-पाठ, दान, जप, होम, कुछ भी काम न आया ! हाय ! तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे ! हाय !

ह०—अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली भाँति देखकर) अरे, इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं ! हाय ! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इसने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ होगा। (बड़े सोच में ! हाय हाय मेरे मुँह से क्या अमंगल निकल गया ! नारायण ! (सोचता है)

शै०—भगवान् विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए। हाय !

ह०—(घबराकर) हाय हाय ! यह क्या ? (भली भाँति देख कर रोता हुआ) हाय ! अब तक मैं सन्देह ही में पड़ा हूँ अरे ? मेरी आँखें कहाँ गई थीं जिनने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहचाना, और कान कहाँ गये थे जिनने अब तक महारानी की बोली न सुनी ! हाय पुत्र

हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एक मात्र अवलम्ब ! हाय तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मा को छोड़ कर कहाँ गये ? अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया ? तुमने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे ? पुत्र ! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझसे कहते, मैं अपने बाहुबल से तुमको इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या ? भगवान् इस अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र ! (रोता है)

अहा ! मुझ से बढ़ कर और कौन मन्द-भाग्य होगा ! राज्य गया, धन जन-कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ ? निस्सन्देह मुझसे अधिक अभागा और कौन होगा ? जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं ? जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निसन्देह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूँ। (रङ्ग-भूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलय काल आ गया ? नहीं, यह बड़ा भारी अशकुन हुआ है, इसका फल कुछ अच्छा नहीं वा अब बुरा होना, ही क्या बाकी रह गया है जो होगा ? हा ! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा सूर्य्य कुल आलबाल-प्रवाल ! हा हरिश्चन्द्र-हृदयानन्द ! हा शैव्यावलम्ब ! हा वत्स रोहिताश्व ! हा मातृ-पितृ-

विपत्तिसहचर ! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहाँ गये ! आज हम सचमुच चाण्डाल हुए। लोग कहेंगे कि इसने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्र-शोक देखा । हाय ! हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे ? (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रकट होने के पहले ही हम भी प्राणत्याग करें ? हा निर्लज्ज प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हा वज्रहृदय ! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता ? अरे नेत्रों ! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो ? या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है । इसके पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राणत्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने के योग्य डाल खोजकर इसमें दुपट्टा बाँधता है) धर्म्म ! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया, परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना ! (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द ! गोविन्द ! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा ! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण-त्याग करना चाहा ! भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण ! नारायण ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्व्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! क्षमा करना, दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चाण्डाल का दास हूँ, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र ! चलूँ, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब

दुःखिनी शैव्या क्या कहती ? (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है।

शै०—(पहली तरह बहुत रोकर) हाय अब मैं क्या करूँ ! अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीऊँगी ! हाय ! मैं आज से निपूती हुई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा ! नित्य सबेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूँगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझसे माँग-माँगकर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली देखकर कैसे प्राण रक्खूँगी ! (रोती है) हाय ! खेलते खेलते आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा ! और मा-मा कहकर तनिक-तनिक बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय हाय ! मैं अब किसको अपने आँचल से मुँह की धूल पोंछकर गले लगाऊँगी और किसके अभिमान से विपत में भी फूली-फूली फिरूँगी ! (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी ! (छाती पीट कर) हाय प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हाय ! मैं ऐसी स्वार्थी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं नहीं, अब मैं न जीऊँगी। या तो इस पेड़ में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी या गङ्गा में कूद पड़ूँगी। (उन्मत्त की भाँति उठकर दौड़ना चाहती है)

ह०—(आड़ से)

तनहिं बेंचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि-आयसु बिन पाई॥
करु न अधर्म सोच जिय माही।
"पराधीन सपने सुख नाहीं॥"

शै०—(चौकन्नी होकर) अहा ! यह किसने इस कठिन समय

धर्म का उपदेश किया। सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ! हाय दैव! तुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊँ? (कुछ धीरज धरकर) तो चलूँ छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति करूँ। (रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय! जिन हाथों से ठोक-ठोक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूँगी, जिसके मुँह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—(बहुत ही रोती है)

ह०—धन्य देवी, आखिर तो चन्द्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज धरोगी तो कौन धरेगा।

शै०—(चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती और रोती।)

ह०—तो अब चलें उससे आधा कफन माँगें (आगे बढ़कर और बल-पूर्वक आँसुओं को रोक कर शैव्या से) महाभागे! श्मशान पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे, सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो। (कफन माँगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलम्।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व्वं लोकोत्तरं कृतम्॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो। यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखण्ड है।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! नारायण ! महाभागे, ऐसा मत कहो, शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ, मृत कम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो। (हाथ फैलाता है)

शै०—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्त्ती का चिह्न देख कर और कुछ स्वर, कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र ! इतने दिन तक कहाँ छिपे थे ? देखो, अपने गोद के खेलाये दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो, अब अनाथ की भाँति मसान में पड़ा है। (रोती है)

ह०—प्रिये ! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो, सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जामात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हमको दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़ कर उसे लपेट लाई हूँ, उसमें से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा। हाय ! चक्रवर्त्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता ! (बहुत रोती है)

ह०—(बल-पूर्वक आँसुओं को रोक कर और बहुत धीरज धर-कर) प्यारी ! रो मत। ऐसे समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उसकी आज्ञा है कि बिना आधा कफ़न लिये क्रिया मत करने दो। इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर

तुमसे इसका आधा कफन न लूँ तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज़ कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो, सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् अपने वंश की यह दुर्दशा देख कर चित्त में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शै०—(रोती हुई) नाथ ! जो आज्ञा। (रोहिताश्व का मृत-कम्बल फाड़ा चाहती है कि रङ्ग-भूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छुटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान् नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।)

भ०—बस, महाराज, बस ! धर्म और सत्य सबकी परमावधि हो गई। देखो, तुम्हारे पुण्यभय से पृथ्वी बारम्बार काँपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो नेत्रों से आँसू बहते हैं।

ह०—(साष्टाङ्ग दण्डवत् करके रोता हुआ गद्गद् स्वर से) भगवन् ! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया ! कहाँ यह शरीर, और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्दघन साक्षात् आप। (प्रेम के आँसुओं से और गद्गद् कण्ठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ०—(शैव्या से) पुत्री ! अब सोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है। (रोहिताश्व की ओर देख कर) वत्स रोहिताश्व !

उठो, देखो तुम्हारे माता-पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम करके माता-पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है।

ह० और शै०—(आश्चर्य, सानन्द, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आँसू बहते हैं और एकटक भगवान के मुखारविन्द की ओर देखते हैं) (श्रीमहादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं।) *

सब—धन्य महाराज हरिश्चन्द्र! जो आपने किया सो किसी ने न किया न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

वि०—महाराज! यह केवल चन्द्र-सूर्य तक आपकी कीर्ति स्थिर रखने के हेतु मैंने कृत्य किया था, सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए।

(हरिश्चन्द्र भगवान् और धर्म का मुँह देखते हैं)

धर्म०—महाराज! राज आपका है, इसका मैं साक्षी हूँ, आप निस्सन्देह लीजिए।

सत्य०—ठीक है। जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है।

---

* श्री महादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सबको विदित है। इन्द्र और विश्वामित्र को लिख चुके हैं। धर्म, चतुर्भुज, श्याम रङ्ग, पीताम्बर, दण्ड, पत्र और कमल हाथ में। सत्य, शुक्लवर्ण श्वेत वस्त्रधारण, नारायण के चारों शस्त्र हाथ में।

श्रीमहादेव०—पुत्र हरिश्चन्द्र ! भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुमने पाया, तथापि, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय।

पा०—पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावें। तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करें।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भ०—और जो तुम्हारी कीर्ति कहे-सुने और उसका अनुसरण करे उसको भैरवी-यातना न हो।

इन्द्र—(राजा को आलिङ्गन करके और हाथ जोड़ के) महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आपका कल्याण ही हुआ, स्वर्ग कौन कहे आपने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिए, आपकी रक्षा के हेतु श्रीशिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारदजी बटु बने थे ; साक्षात् धर्म ने आपके हेतु चाण्डाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चाण्डाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा से केवल आपके सुयश के हेतु किया गया।

ह०—(गद्गद स्वर) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है ?

भ०—महाराज ! और भी जो इच्छा हो मांगो।

ह०—(प्रणाम करके गद्गद स्वर से) प्रभु ! आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपके आज्ञानुसार यह

वर माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुण्ठ जाय और सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भ०—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट-पतंग जीवमात्र सब परमधाम जायँगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायँगे, तब भी वह तुम्हारे इच्छानुसार सत्यमात्र एक पद से स्थिर रहेगा। इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी माँगो। मैं तुम्हें क्या क्या दूँ? क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका, तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुमको और कुछ वर दूँ। तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता है।

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवन्! मुझे अब कौन इच्छा है। मैं और क्या वर माँगूँ, तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो।

"खल गनन सों सज्जन दुखी मत होइँ, हरि पद रति रहै।
उपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहि मत्सर नारि नर सम होहि, सब जग सुख लहै।
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृतबानी सब कहै॥"

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

॥ इति ॥

सत्य-हरिश्चन्द्र

प्रस्तावना

१—सत्या···चन्द—क्रम से (१) शिवजी (२) राजा हरिश्चन्द्र (३) श्री कृष्ण (४) चन्द्रमा और (५) कवि के पक्ष का अर्थ—

सत्यासक्त—(१) सती में आसक्त (२) सत्य में आसक्त (३) सत्यभामा में आसक्त (४) सती तारा गुरु-पत्नी में आसक्त (५) सत्य में अनुरक्त।

द्विज प्रिय—(१) जिनको द्विज अर्थात् चन्द्रमा प्रिय है। (२-३) जिनको ब्राह्मण प्रिय हैं। (४) ब्राह्मणों का प्रिय क्योंकि चन्द्रमा द्विजराज है (५) द्विजन्मा अर्थात् गणेश जिनको प्रिय है। कवि पहले गणेश जी का ही ध्यान करते हैं।

जन···तजन—(१) भक्तों के हित के लिये वैभव देने वाले।
(२) प्रजा के हित के लिये धन देने वाले।
(३) भक्तों के लिये लक्ष्मी तक का त्याग करने वाले*।
(४) प्रजा के हित के लिये चाँदनी फैलाने वाला।

---

* रामचन्द्र जी ने उत्तर-रामचरित्र में कहा भी है—स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

(५) प्रजा का हितैषी तथा लक्ष्मी त्याग करने वाला अर्थात् निःस्पृह ।

नन्दी—मंगलाचरण ।

सूत्रधार—नाट्यशाला का मुख्य संचालक, मुख्य अभिनेता ।

धन्य—अत्यन्त सुख देने वाली ।

गुणज्ञ—गुणी, गुणवान् ।

रसिक—प्रेमी, गुण-ग्राही ।

प्रवृत्त हुई—झुकी ।

२ अंध-परम्परा—पुरानी लकीर पीटना, बिना समझे सोचे पुरानी रीति पर चलना ।

पूछ—क़दर ।

बात—क़दर ।

झूठी खैरखाही—बनावटी राजभक्ति ।

लम्बा चौड़ा गाल बजाना—दून की हांकना, लम्बे चौड़े व्याख्यान झाड़ना ।

कौतुकों—तमाशों ।

नेपथ्य—नाट्यशाला का वह भाग जहां अभिनय करने वाले भेष बदलते हैं—यह स्थान परदे के पीछे होता है ।

नटी—अभिनेत्री, अभिनय करने वाली ।

मनिहारिन—चूड़ी बेचने वाली ।

सावधान—होशियार, आगाह ।

मंज रहा है—खूब तैयार हो रहा है ; बहुत अच्छी तरह याद है ।

३ आख्यान—कथा, कहानी ।

नीर—आंसू ।

हरिचंद—सूर्य और चन्द्रमा ।

समता—बराबरी ; तुलना ।

४ सत्य···के—एक की सत्य के डर से।

सुरलोक—देवता लोग।

इन्द्र—देवताओं का राजा।

उर—हृदय।

इति प्रस्तावना

प्रथम अंक

५ जवनिका—यवनिका, पर्दा।

नारद—एक प्रसिद्ध भगवद्भक्त मुनि; इन्होंने दक्ष प्रजापति के पुत्रों को दो बार सांसारिक कर्मों से हटा कर ज्ञान की ओर प्रवृत्त कर दिया था जिससे दक्ष ने इन्हें शाप दिया कि यदि तुम किसी स्थान पर दो घड़ी से अधिक ठहरोगे तो तुम्हें कष्ट होगा इसी कारण ये सदा विचरण ही किया करते हैं।

इन्द्र—देवताओं का राजा।

धन्य भाग्य—हम बड़े भाग्यवान् हैं कि हमें आपका दर्शन मिला।

६ साधु···होते हैं—सज्जनों की प्रकृति ही दूसरों का भला करने को होती है।

कामकाजी—धंधे में फँसे हुए।

साधु संगम—साधु-समागम, साधुओं से मिलना, सत्संग।

दुर्लभ—कठिन, जो कठिनता से मिल सके।

प्रबन्धों—काम धंधों, इन्तज़ाम।

शिष्टाचार—तकल्लुफ़।

सोहता—शोभा देता है, उचित नहीं है।

सहज मुँह देखा व्यापार—राजाओं की प्रकृति ही होती है कि वे हर एक से सम्मुख होने पर ऐसे शिष्टाचार का व्यवहार करते हैं।

राजा हरिश्चन्द्र धन्य है—राजा हरिश्चन्द्र की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

निष्कपट—छल हीन, सरल।

अकृत्रिम—शुद्ध, जिसमें बनावट का लेश भी न हो।

हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है—हरिश्चन्द्र के समान दूसरा कोई नहीं, जैसे गुण उसमें हैं वैसे किसी और में नहीं।

गुण गाते हैं—प्रशंसा करते हैं।

हीनावस्था—गिरी दशा।

७ गुणग्राही—गुण को ग्रहण करने वाला, गुण की सराहना करने वाला।

उत्कट कीर्ति—उत्कृष्ट यश, गौरव, महिमा।

ईर्ष्या—डाह, जलन।

पदाधिकारियों—सम्मानित पदवी पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों।

सन्ताप—दुःख।

सम्पत्ति और कीर्ति—समृद्धि और यश।

बड़ाई—बड़प्पन, महत्ता।

दृढ़ होकर—पक्का होकर, स्थिर होकर।

धर्मसाधन—धर्म के अनुसार कर्तव्य पालन।

प्रमाण—सबूत।

बुरा मानते हैं—ईर्ष्या करते हैं, खिन्न रहते हैं।

उदाहरण...योग्य—जिसका अनुकरण दूसरों को करना चाहिये, आदर्श।

चरित्र—चाल चलन, आचार विचार।

वचन के उपदेशक—बातों द्वारा उपदेश देने वाला।

क्रियादिक से—धर्मविहित कर्मों का करने वाला, संध्या अग्निहोत्र इत्यादि कर्मों का करने वाला।

धर्मनिष्ठ—धर्म में श्रद्धा रखने वाला, धार्मिक।

८ टकसाल—(उस स्थान का नाम है जहाँ मुद्रा, चलन बाज़ार सिक्के बनते हैं, जिनको देखते ही हर एक मनुष्य नियत मूल्य जान लेता है और उस पर उन्हें स्वीकार करता है—) प्रमाण, जिस पर सब का विश्वास हो।

प्रमाण—विश्वसनीय।

महाशय—महान् आशय वाले, उदार चरित, विशाल हृदय।

आशय—विचार, मन की इच्छा।

भीतर...हो—जो जैसा मन में सोचे वैसा ही वाणी से प्रकट करे और जैसा वाणी से कहे वैसा ही कर्म करे।

विद्यानुरागिता—विद्या से ेम, विद्याव्यसन।

उपकार प्रियता—दूसरों के साथ भलाई करना, अच्छा लगना, परोपकार-रति, परोपकार में प्रीति।

सहज—प्रकृति से, स्वाभाविक।

अधिकार में क्षमा—प्रभुता अथवा दण्ड देने की शक्ति होने पर भी जो क्षमा करता हो।

धैर्य्य—धीरज, चित्त को डाँवाडोल न होने देना, घबराना नहीं।

अनभिमान—घमंड न करना।

स्थिरता—दृढ़ता।

उसी...पुत्रवती है—जिसके ऐसा पुत्र हो उसी स्त्री को पुत्रवती समझना चाहिये।

निश्चला—अचल, दृढ़, अटल

भूषण—शोभा बढ़ाने वाली।

दृढ़—निश्चित, पक्का।

छोटे जी के—अनुदार, संकुचित हृदय के।

महारम्भ—बहुत बड़ा, जिसका आरम्भ करने में बहुत अधिक यत्न करना पड़े

व्याकुलता—घबराहट, अकुलाहट ।

अवकाश—गुंजायश ।

९ व्यर्थ—फ़िज़ूल, बेकार ।

यथायोग्य—समुचित रीति से ।

लक्ष्मी—धन, संपत्ति ।

स्थिर है—नष्ट नहीं होती ।

कलंक—दूषित करने वाला, बदनाम करने वाला ।

पात्र—अधिकारी, योग्य अयोग्य ।

क्षय—नाश ।

उपार्ज्जन···नहीं—कमाया नहीं ।

कमती—कमी ।

याचक—माँगने वाले ।

वित्त के बाहर—इतना माँगे जितने के वह योग्य नहीं है, जितना पाने का वह अधिकारी नहीं ।

सर्वस्व-हानि—सर्वनाश, देने वाले के पास कुछ भी न रहे ।

मानियें—बातवालों, प्रण रखने वालों ।

कोश—ख़ज़ाना, धन ।

उभय संकट—धर्म संकट, दोनों ओर बाधा और कष्ट ।

१० मूल—जड़, नींव ।

परिहास—हँसी, मज़ाक ।

किसी...निन्दा है—किसी महापुरुष के बारे में ऐसा सन्देह करने में भी जिसकी निन्दा होती है । उसपर ऐसा शक करना भी उसकी बदनामी करना है ।

अभिमान वचन—शब्द जिनके द्वारा वह अपने आत्माभिमान को प्रकट करता है, अपने संकल्प को प्रकाशित करता है ।

चन्द.....विचार—चाहे चंद्रमा, सूर्य अपने स्थान से हट जाय, चाहे संसार का सब काम डाँवाडोल हो जाय पर हरिश्चन्द्र का सत्य-संकल्प कभी नहीं डिग सकता।

निर्मल—उज्वल, निर्दोष, निष्कलंक।

कामना—इच्छा।

क्षुद्रता—नीचता, ओछापन।

११ शुभ अनुष्ठानों—शुभ कर्मों, पुण्य-कर्मों।

महातुच्छ हैं—अत्यन्त क्षुद्र है, कोई चीज़ ही नहीं।

क्षुद्राशयों—संकीर्णहृदयों, नीच प्रकृति वालों।

आदरणीय—आदर के योग्य, सम्मान के योग्य।

१२—रुष्टता—नाराज़ी।

बाधक—रोक लगाने वाले, हारिज।

उदासीन—लापरवाही रूखे।

रूखापन—शुष्कता, नीरसता, अशिष्टता।

१३ जली कटी—टेढ़ी टेढ़ी, कुढ़नपन की।

प्रसंग निकला था—विषय छिड़ा था, ज़िक्र हुआ था।

भृकुटी—भौंह।

भ्रूभंग—भौंह चढ़ी, चढ़ी हुई त्यौरी।

सिपारसी—ख़ुशामदी।

तेजोभ्रष्ट—प्रताप हीन।

दूसरा अङ्क

१४ अंग—शरीर।

जुग जुग—युग युगान्तर तक, अनेक वर्ष।

शांति—अनिष्ट निवारण।

आँचल पसार के—अत्यन्त दीनता से।

आपका मंगल हो, कुशल हो, दीर्घ आयु हो; गो, घोड़े हाथी, धन धान्य की वृद्धि हो,

१५ ऐश्वर्य हो कुशल हो, शत्रुओं का नाश हो, सन्तान की वृद्धि के साथ साथ भगवान् की भक्ति हो।

अभिमंत्रित जल—जिसमें मंत्र द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया गया हो, फूका हुआ, पढ़ा हुआ।

रक्षा बंधन—राखी, रक्षा-सूत्र।

मार्जन—छींटे देना, शुभ कामना के हेतु यह शास्त्र का एक प्रयोग है।

दूर्वा—दूब, तृण।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करें (अभिषेक-कर्म के अंत में शान्ति के लिये स्नान करना) गंधर्व, किन्नर और नाग सदा तुम्हारी रक्षा करें, पितर, गुह्यक, यक्ष, देवी, भूत और मातृकाएँ सब तुम्हारा अभिषेक करें और सदा तुम्हारी रक्षा करें। कल्याण हो, मंगल हो, महा लक्ष्मी प्रसन्न हो, हे सती तुम पति पुत्र के साथ सौ वर्ष जियो।

जो पाप, रोग और अमंगल है वह दूर हो जाय। जो मंगल, शुभ, सौभाग्य, धन धान्य, आरोग्य, बहुपुत्रता है वह सब ईश्वर की कृपा से और ब्राह्मण के वचन से तुम्हारे लिये हो।

१६ अक्षत—चावल।

वैतालिक—स्तुति-पाठक।

रविकुल रवि—सूर्यकुल के सूर्य राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंशी थे।

निसि—रात।

प्रजा-कमल-गन—प्रजा रूपी कमल-समूह।

मन्द—तेज हीन, फीके।

तम—अंधकार।

उनमूले—दूर हुए, नष्ट हुए, भागे, खिसके।

नसे—नष्ट हुए, भागे, खिसके।

लम्पट—छलिये, कपटी।

मागध बंदी सूत—भाट, यश का वर्णन करने वाले तथा पौराणिक।

कलरोर—चहचहा व शोर।

जस—यश, कीर्ति।

परसि—छूकर।

अंगुरिन चट—अंगुलियों से चुटकी बजा कर।

अलियां—सखियां।

थित—स्थित, लीन।

रिपु-युवती-मुख-कुमुद-मन्द—शत्रुओं की स्त्रियों के मुख-कुमुदिनी के समान मुरझा गये; कुमुदिनी का फूल चांदनी में खिलता है और सूर्योदय होने पर कुम्हला जाता है।

जन चक्रवाक अनुरागे—चकवा चकवी रात को अलग अलग रहते हैं सूर्योदय होने पर ही मिलते हैं और प्रसन्न होते हैं।

अरघ—अर्घ्य, सम्मान भाव सूचक जल।

उपहार—भेंट।

तोखौ—संतुष्ट करो।

परसि कर—हाथ से पकड़ कर, (किरण से छूकर)

पोखौ—पोषण करो; सूर्य सब का समान भाव से पालन करता है।

१७ परिकर—समाज, मुसाहिब।

यथास्थान—अपने अपने योग्य आसन पर।

मलिन—उदास।

दुःस्वप्न—बुरे स्वप्न ।

भीरु—डरपोक ।

वीर-कन्या—वीर की कन्या, वीर की स्त्री और वीर की माता ।

सहज—स्वभाव से ।

मंगल साधन—कल्याण और सुख के निमित्त कार्य ।

निरी—एक मात्र, केवल ।

शुभाशुभ का विचार—किसका फल अच्छा होता है किसका बुरा ।

१८ दिव्य महाविद्याओं—काली, तारा, बगला मुखी आदि ।

नाट्य—अभिनय ; नकल ; ऊपर से दिखाना ।

थाती—धरोहर, अमानत ।

व्यवहार—कार्य ।

अर्द्धाङ्गिनी—पत्नी (आधा अंग)

प्रत्यक्ष—जाग्रत दशा में, होश में ।

१९ डौंड़ी पिटवादो—मनादी कर दो, प्रकाशित कर दो ।

अज्ञातनाम-गोत्र—जिसका नाम और गोत्र मालूम नहीं है ।

अभाव—अनुपस्थित, गैर हाज़िरी, अदम मौजूदगी ।

कार्याधीशों —अफ़सरों ।

२० पूर्व परिचित—पहले से जाने हुए ।

ज्ञात – मालूम ।

क्षत्रियाधम—क्षत्रियों में नीच ।

सूर्य्यकुलकलंक—सूर्य वंश में धब्बा लगाने वाले ।

मिथ्या—झूँठे ।

ब्राह्मण जाति को स्वयं ग्रहण करने के कारण दुर्विनीत, अद्वितीय ब्राह्मण, गर्व करने वाले वशिष्ठ के पुत्र रूपी वन को अग्नि रूप, नयी सृष्टि उत्पन्न करने के कारण डरे हुए

जगत् के लिये यम के समान, चांडाल रूप त्रिशंकु को यज्ञ कराने वाले, मुझ विश्वामित्र को नहीं जानता है।

दुर्भिक्ष आदि के समय उसी प्रकार से (अर्थात् चाण्डाल से मांस लेकर) अपना निर्वाह करने वाले, राजाओं के दान लेने के विरुद्ध, आड़ी (पक्षी विशेष) और बगुले के युद्ध द्वारा जीव लोक को कँपाने वाले, तेज तथा तप के निधान, आपको कौन नहीं जानता है ?

राज-प्रतिग्रह-पराङ् मुख—राजाओं से दान लेने के विमुख।
जाति-स्मरण—क्षत्रिय जाति के स्मरण, (विश्वामित्र क्षत्रिय थे)
कृपाण—तलवार।

२१ दीर्घतपोवर्द्धित—बहुत समय के कारण बढ़ा हुआ।
गर्व—घमंड।
राजकुलांगार—राज वंश में अग्नि के समान दाहक।
इस बुद्धि से—इस मतलब से, इस तात्पर्य से।
क्षुद्र—ओछी, छोटी।
ईषत्क्रोध से—थोड़े से गुस्से से।
इक्ष्वाकु—सूर्य वंश का पुरुषा, राजा इक्ष्वाकु।
बसुधे—हे पृथ्वी।
धरमबद्ध—धर्म से बँधा हुआ, धर्म से लाचार।
जोय—देख कर।
सत्य-भ्रष्ट—जो सत्य से गिर गया हो, डिग गया हो।

२२ स्वस्ति—मंगल हो।
ब्रह्मदंड—ब्राह्मण का दिया हुआ दंड।
अवधि—मियाद, मोहलत।
सुअन—लड़का।
मन्द—नीच।

तीसरे अंक में अंकावतार

२३ बाराणसी—काशी, बनारस।

उऋण—ऋण से मुक्त, बेबाक।

उत्पात—झंझट, बखेड़ा।

२४ शिशिशि—शिव, शिव, शिव।

गति भई—मुक्ति हुई।

येषां....गतिः—जिसकी कहीं भी गति न हो उसकी काशी में गति होती है।

ठिकाना लगना कठिन है—ठहरने व रहने की जगह मिलना कठिन है।

२५ अलक्ष—अप्रत्यक्ष, छिपे हुए।

प्रवृत्त होऊँ—लगूँ।

तीसरा अंक

२६ चारहु आश्रम धर्म—चारों आश्रम और चारों वर्णों के लोग (चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र)

मनि—मणि, रत्न, जवाहिर।

कंचन—सुवर्ण, सोना।

धाम—महल।

अकास विभासिका—आकाश में शोभायमान, क्योंकि काशी पृथ्वी के बाहर आकाश में त्रिशूल पर स्थित है।

पुरीन की नासिका—सब पुरियों में श्रेष्ठ, सब पुरियों की नाक।

गिरिधारनजु—कवि का नाम।

देवनदी—गङ्गा।

बर बारि बिलासिका—सुन्दर जल के विलास से युक्त।

पुन्य प्रकासिका—पुण्य का प्रकाश करने वाली।

पाप-विनासिका—पाप का नाश करने वाली।
हीय-हुलासिका—हृदय को आनन्दित करने वाली।
कासिका—काशीपुरी।
विंदुमाधव बिसेसरादि—विंदु माधव, विश्वनाथ (देवताओं के नाम)
जम-मुख—यमराज के मुख पर।
मसी—स्याही, कारिख।
अनादि—जिसका आदि नहीं, बहुत प्राचीन।
पंच गङ्गा मणिकर्निकादि—पंच गङ्गा व मणिकर्णिका काशी के तीर्थ स्थान हैं।
सात आवरण मध्य—सात घेरों के बीच में।
धसी है—बसी है।
भागीरथी—गङ्गा।
आसु—शीघ्र।
कर्म रूपी रसी—कर्म रूप रस्सी या बंधन।
ससी—चन्द्रमा।
जसी—कान्ति युक्त, यशस्वी।
असी बरना—असी और बरना नदियां काशी में हैं।
पाप खसी हेतु—पाप रूपी बकरे के लिए।
असी—तलवार।
लसी—शोभायमान है।
रचित प्रभासी भासी—ऐसा भासता है मानों कान्ति की ही बनाई गई है।
अवलि—कतार।
आकासी—मकान के सब से ऊपर का भाग।
फबे—शोभायमान है।
रतन लकासी—जवाहरात की पच्चीकारी।

बर—सुन्दर ।
गुनरासी—गुणी ।
बिस्व कीरति बिलासी—जगत् में यश फैलाने वाली ।
रमाहासी लों—लक्ष्मी के हास्य के समान ।
उजासी—प्रकाश, चमक ।
जगत हुलासी है—संसार को आनन्द देने वाली है ।
खासी—पुरी ।
परकाशी—प्रकाशित ।
पुनवासी चंद्रिकासी—पूनों की चाँदनी की तरह ।
अबिनासी—नाश-रहित ।
अघनाशी—पाप-नाशक ।
२७ त्रास—डर ।
पाप प्रतापहि—पाप के प्रभाव को ।
दूर दसो—दूर हटा दिया ।
अनंग—कामदेव ।
बिरचे—बनाये ।
गिरिधारन—कृष्ण ।
धारन धारन में—धार धारण करने में ; स्नान करने में ।
उज्जल—उज्ज्वल, श्वेत ।
हीरक—हीरे के टुकड़े ।
छहरति—उछलती है ।
मुक्ता—मोती ।
पोहति—गूँथती है ।
लोल—चंचल ।
लहि पवन—हवा लगने से ।
बिबिध—अनेक प्रकार के ।
मनोरथ—इच्छा, अभिलाषा ।

सुभग-स्वर्ग-सोपान-सरिस—सुन्दर स्वर्ग-सोपान के समान (सोपान-सीढ़ी)

त्रिविध भय—दैहिक, दैविक और भौतिक तापों का भय।

श्री हरिपद.....सुधारस—यह अमृत-रस विष्णु भगवान् के नख रूपी चन्द्रकान्त मणि से रिसा हुआ है।

ब्रह्म-कमंडल-मंडल—ब्रह्मा के कमंडल की शोभा बढ़ाने वाली।

भव-खंडन—संसार के दुःख नष्ट करने वाली।

सुर-सरबस—देवताओं का सर्वस्व।

मालतिमाल—चमेली की माला।

ऐरावत—इन्द्र का सफ़ेद हाथी;

गिरिपति.....कल—पर्वतों के स्वामी हिमालय के गले की माला।

सागर-सुवन-सठ-सहस—सगर के साठ हजार पुत्र कपिल के क्रोध से भस्म हो गये थे। भगीरथ ने गङ्गा को पृथ्वी पर लाकर उनका उद्धार किया।

मात्र—केवल।

उद्धारण—उद्धार करने वाली।

संचारण—जाने वाली; संचरण करने वाली।

ललकि—उमंग से, प्रेम से।

धाई—दौड़ कर।

अंकम—गोद में।

छतरी—छत्रीदार झोंपड़ियाँ।

मढ़ी—छोटे छोटे मंदिर।

बढ़ी—बहुत सी।

जोहत—देखते ही।

२८ धवल—सफेद।

फरहरत—उड़ती हैं।

धुजा—ध्वजा ।

घहरत—बजते हैं ।

धमक्कत—बजते हैं ।

करि साका—नामधरी के साथ ।

मधुर—मीठी ।

बारि...उछारत—दोनों हाथों से पानी उछालती हैं ।

जुगअंबुज.....निकारत—पानी उछलता हुआ ऐसा मालूम होता है मानो दो कमल मिल कर स्वच्छ मोतियों के गुच्छे गंगा जी में से निकाल रहे हैं ।

बदन—मुख ।

करन—हाथों से ।

बारिधिनाते—समुद्र के संबन्ध का लिहाज करके ।

ससि...मिटावत—मानों कमल चंद्रमा का कलङ्क धो रहा है ।

लहलही—हरी भरी ।

नवल कुसुमन—नये फूलों से ।

तितहीं—वहीं ।

पाट—तख्त, गद्दी ।

२९ ऋण काढ़ें—रुपया उधार लें ।

हाय हाय मची है—चित्त को बेचैनी है ।

आतंक से—भय से ।

देह दारा सुअन—अपना शरीर, स्त्री, पुत्र ।

मन्द—नीच ।

राजभ्रष्ट—राज से अलग ।

३० सत्यभ्रष्ट—सत्य से च्युत ।

कौशिक—विश्वामित्र ।

महानुभावता—बड़ा प्रभाव होना, बड़प्पन ।

कृतार्थ—कृतकृत्य, धन्य ।

३१ विक्रय—बेचना।

दैव बली है—भाग्य प्रबल है।

दुष्कर—कठिन।

आर्य—श्रेष्ठ।

आर्य पुत्र—स्त्री के द्वारा पति का संबोधन।

३२ कातर—दीन।

चक्रवर्ती—भू-मंडलेश्वर, सार्वभौम, सम्राट्।

सम्भाषण—बातचीत।

उच्छिष्ट-भोजन—जूठा खाना।

३३ बटुक—ब्रह्मचारी।

धारा-प्रवाह—एक के बाद दूसरा, लगातार।

कामकाजी—अपने अपने काम में लगने वाले।

कान नहीं दिया जाता—सुनने की क्षमता नहीं रही।

अग्निहोत्र—अग्नि-कुंड।

३४ विशाल—बड़े।

प्रशस्त वक्षस्थल—चौड़ी छाती।

वृत्ति—कर्म, आजीविका, धनोपार्जन का साधन।

आकृत—जीने जी।

विदीर्ण होता—फटता।

३५ आराधना—सेवा।

३७ धिक् तपो.....दशाम्—तप को धिक्कार है, व्रत को धिक्कार है, ज्ञान को धिक्कार है और विद्वत्ता को धिक्कार है क्योंकि तुमने हरिश्चन्द्र को इस दशा को पहुँचा दिया।

विश्वेदेवा—विश्वा के दशपुत्र जो साथ रहते हैं। उनके नाम—

वसुः सत्यः चतुर्दक्षः कालः कामो धृतिः कुरुः।
पुरूरवा मद्रवश्च विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः॥

किरीट कुंडल—मस्तक और कान के भूषण।

प्रतच्छ हरिरूप—प्रत्यक्ष भगवान् के रूप ।

३८ थल नभ—पृथ्वी और आकाश ।

थिर—स्थिर ।

मरजाद—मर्यादा, नियम ।

राजर्षि—राजाओं में श्रेष्ठ ।

त्रिभुवन—तीन लोक ।

तोह.....से—तुम्हें पूछने से मतलब ।

३९ अस्ताचल—जिस पर्वत पर सूर्य का अस्त होता है ।

डोम—एक अछूत जाति ।

अमल—हुकूमत ।

मसान—मुर्दघटा ।

मत्त—मतवाला, उन्मत्त ।

दारुण—कठिन ।

व्यसन—प्रसंग, अवसर, संकट ।

स्वयं.....—तपस्वी अपने आप दास होते हैं ।

४० नियम—शर्त ।

असन—भोजन ।

पूरो—पूरा हुआ ।

दाप—दर्प, अभिमान ।

४१ कर—महसूल ।

किरिया—मृत-संस्कार ।

चौथा अङ्क

४२ घनघोर—भयानक ।

कफनखसोटी—कफ़न लेना ।

४३ संस्कार—मृत्यु के बाद के कर्म, दाह इत्यादि ।

मुद्रा से—चेहरे से ।

बाए—खोल कर ।

डैना—पंख ।

कर्णकटु—जो कानों को बुरी लगे ।

एक के शब्द की लाग से—एक को चिल्लाता सुन कर ।

चिर्राइन—चिड़ाँद, मुर्दे के जलने की बदबू ।

बीभत्स—घृणा पैदा करने वाला ।

शव—लाश ।

माटी—लाश ।

जनावरां—जानवर ।

४४ उचारत—उखाड़ता है ।

तुच—त्वचा, खाल ।

बसा—चरबी ।

कादर—कायर ।

जेहि चन्द बखान्यौ—जिसको चन्द्रमा के समान बतलाया ।

विक्रम पायें—पराक्रम दिखाते हैं ।

रसना—जीभ ।

जुड़ानी—सन्तुष्ट हुई ।

बच टेका—बचन की आन ।

४५ हेरी—देखी, सही ।

कपाल क्रिया—मस्तक को तोड़ना, एक मृतक संस्कार ।

दृगकोर—दृष्टि कोण ।

पुरु—ययाति का पुत्र जिसने पिता को अपना यौवन दे दिया था ।

दधीचि—जिन्होंने वृत्रासुर के मारने के लिये इन्द्र को अपनी हड्डियां दे दीं ।

अभिषेक—तिलक, राजटीका ।

घिन—घृणा, नफरत ।

कात्यायनी—देवी, पार्वती ।

बीभत्स उपचार—ऐसा सामान जिसमे घृणा उत्पन्न हो ।

४६ लोलक—घंटा बजाने का लटूटू ।

अभिषेक—पूजन ।

भगवति...नमस्ते—हे भगवति, हे चंडी, हे सुन्दर गतिवाली, प्रेत पर बैठने वाली, प्रेतों की हड्डियों से भयंकर रूप वाली, प्रेतों को खाने वाली, हे भैरवी, तुझे नमस्कार है

साधु—धन्य ।

पद्मिनीवल्लभ—कमलिनी का प्यारा ।

लौकिक वैदिक—संसारिक तथा धार्मिक ।

प्रवर्तक—संचालक ।

प्रचण्ड—तीव्र ।

गगनाङ्गन—आकाश रूपी आँगन ।

काल सर्प का शिखामणि—काल रूपी सर्प का मणि ।

मिस—बहाना ।

कपालिक—वाममार्गी, अघोरी ।

४७ रुरुआ—एक प्रकार का उल्लू ।

ररत—बोलता है ।

रव—शब्द ।

हड्डगिल्ल—बड़ी जाति का गिद्ध ।

भयद—भयानक, डरावना ।

तुमुल—घोर ।

४८ पंशाखा—पांच बत्तियों की मसाल ।

४९ क्रीड़ा-कुतूहल—खेल तमाशा ।

बिकराल—भयंकर ।

भूतनाथ—महादेव ।

५० तम—अंधकार ।

टूट...लूट—चाहे सब सामान टूटा फूटा हो, घर टपकता हो, खाट भी टूटी हो तो भी जो सिर के नीचे प्रियतम की बाँह हो तो सुख ही सुख है ।

घोघी—तिकोना लपेटा कंबल ।

चपला—बिजली ।

चहूँधा—चारों ओर ।

चिनगी चिलक—आग की चिनगारियों की चटक ।

पट बीजना—जुगनू, एक कीड़ा जो रात को चमकता है ।

हेती बगमाल—हित चाहने वाली बगुलों की कतार ।

वीरबधू—वीर बहूटी ।

भुव—पृथ्वी ।

पावस—वर्षाऋतु, बरसात ।

सरिस—समान ।

आयुस लांघै कोय—आज्ञा का उल्लङ्घ कर, हुकुम न माने ।

प्रतिभट ताको होत—उससे लड़ेगा ; उसका मुकाबला करेगा ।

५१ अस्थि अभूसन—हड्डियों के गहने ।

रुद्र—शिव ।

वृत्ति अयाचित—बिना माँगी जीविका ।

आत्मरति—आत्मा से प्रीति ।

दुःख परम्परा—दुःखों की कतार ; एक दुःख के बाद दूसरे दुःख का आना ।

सोग—शोक ।

५२ बरु—भले ही ।

विन्ध्या—विन्ध्याचल पर्वत ।

अर्थी है—याचक है ; मतलब से आये हैं ।

५३ आकर—खानि ।

निधि—नव निधि ।

५४ त्रिलोक विजयिनी—तीनों लोकों को जीतने वाली ।

वशवर्तिन—अधीन, ताबे ।

वेताल—भूतयोनि विशेष ।

रसेन्द्र—पारा ।

५५ दास्य—दासत, गुलामी ।

स्वत्व मात्र—सब अधिकार ।

राघल—छोटे राजा ।

ब्रह्ममुहूर्त—सूर्य का उदय होने के पहले की दो घड़ी ।

५७ सद्यः—तत्काल ।

तक्षक—सर्पराज ।

अरुण—सूर्य ।

चित चीतो—मन चाहा ।

चितवति—देखती है ।

चाय—चाव, उमंग ।

कलाधर—चंद्रमा ।

जामिनी जोति—रात्रि की आभा ।

जम जाची—यमराज ने ले ली, रात्रि का अंत हो गया ।

विहंगम—पक्षी ।

५८ सहस्र परिचारिका—सहस्रों नौकरानियाँ ।

राखत हाथहिं हाथ—हाथों हाथ रखती थीं, ज़मीन पर पैर पड़ने ही न देती थीं ।

धारण सीस—सिर पर रखते थे, शिरोधार्य करके पालन करते थे ।

दैव...भये—भाग्य रूपी सर्प से डँस गये ।

५९ अनुशासन—उपदेश, आदेश ।

निष्करुण—बेरहम, निर्दय ।

६० गुनी—स्याना, जो मंत्र द्वारा साँप के काटने का इलाज करता है।

सुकुआर—सुकुमार, कोमल।

बेला—समय।

आसरे बैठे हैं—राह देख रहे हैं।

६१ सुग्गा—तोता।

कोख में आग लगना—संतान से वियोग होना।

६२ आयुष—उम्र, (हाथ में उम्र की रेखा)

बज्र कहाँ से टूट पड़ा—आफ़त कहाँ से आगई।

६३ अवलम्ब—सहारे।

मंदभाग्य—अभागा, बद क़िस्मत।

दारुण—कठिन, दुःखदायी।

सूर्यकुल-आल-बाल प्रवाल—सूर्यकुल-रूपी थाले की कोंपल।

हरिश्चन्द्र हृदयानंद—हरिश्चन्द्र के हृदय को आनंद देने वाले।

शैव्यावलम्ब—शैव्या के आधार।

६४ विपत्ति-सहचर—विपत्ति का साथी।

बज्रहृदय—बज्र के समान कठोर हृदय।

व्यर्थ प्रलाप—फ़िजूल की बकबक।

अनर्थ—उपद्रव, उत्पात।

इच्छा-कृत—जिसके करने की इच्छा हुई थी।

सर्वान्तर्यामी—सब कुछ जानने वाला।

६५ महाभागे— भाग्यवती।

अहो...कृतम्—हे राजा हरिश्चन्द्र, तुम्हारे धैर्य, सत्य, दान, बल सब आश्चर्य जनक हैं। तुमने सब कार्य अलौकिक किये हैं।

६७ प्रायश्चित्त होगा—पाप से छूटने के लिये सत्कर्म करना पड़ेगा

आकृति—आकार, शकल ।

सिल—पत्थर ।

६८ परमावधि—अंतिम सीमा ।

६९ मुखारविंद—मुख-कमल ।

अस्तित्व—सत्ता, विद्यमानता ।

७० अनुसरण करे—अनुकूल चले ।

भैरवी यातना—वह यातना जिसे मरते समय प्राणियों की शुद्धि के लिये भैरव जी देते हैं ।

७१ परमधाम—वैकुंठ ।

भारतवाक्य—नाटक के अंत का आशीर्वाद ।

हरिपद रति—भगवान के चरणों में प्रीति ।

उपधर्म—गौणधर्म, मतमतांतर ।

सत्व—अधिकार ।

कर-दुख—टैक्स का दुःख ।

बुध—पंडित ।

मत्सर—डाह ।

ग्राम कविता—गँवारू कविता ।

अमृत बानी—अमृतमयी वाणी, मधुर कविता ।

॥ इति ॥